अभिनव कृषि

वर्ष-4 अंक-1 मार्च-2022

विशेषांक

● हाईटेक बागवानी ● सब्जी उत्पादन तकनीक ● मृदा प्रबन्धन ● ग्रीष्मकालीन खेती ● कटाई उपरान्त प्रौद्योगिकी

प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)-324001

#IFFCONanoUrea
IFFCO
इफको नैनो यूरिया तरल
पेश है किसानों के लिए दुनिया का पहला नैनो यूरिया!
लागत कम करने में सहायक
मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाए
पौधों के पोषण में सहयोगी
किसानों की आय में सुनिश्चित वृद्धि
फसल उपज को बढ़ाए
पारंपरिक यूरिया से सस्ता
IFFCO
NANO UREA
Liquid
FOLLOW US:
INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED
IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop
इण्डियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड
जयपुर तृतीय तल, नेहरू सहकार भवन, जयपुर, राजस्थान, राजस्थान 302001
दूरभाष : 0141-2740660, 2740307, 2740307

ललित पाटीदार
(M.Sc. Horticulture)
मो. 9413023482, 9887437524
अम्बिका मॉर्डन एग्रीकल्चर
KRISHAN
SUMITOMO CHEMICAL
Ranadey
DUPONT
BAYER
BASF
We create chemistry
नर्सरी टूल्स, मल्च, स्प्रे पम्प, खाद, बीज, कीटनाशक, वर्मी कम्पोस्ट, ऑर्गेनिक खाद एवं दवाई के लिए सम्पर्क करें।
चन्द्रभागा रोड़, झालरापाटन, जिला-झालावाड़ (राज.) 326023

Agriculture University, Kota
Meeting of High Power Committee
for Income- Enhancement
14-15 March, 2022

कृषि प्रौद्योगिकी प्रबन्धन एवं गुणवत्ता सुधार केन्द्र

(Agriculture Technology Management and Quality Improvement Centre -ATMQIC)

प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

स्थापना के उद्देश्य

- नवोन्मेषी कृषि प्रौद्योगिकी का प्रभावी हस्तानान्तरण
- किसान कॉल सेन्टर की स्थापना
- कृषि तकनीकी संग्रहालय की स्थापना
- कृषि संसाधन केन्द्रों की स्थापना
- कृषि आदान व उत्पाद बिक्री केन्द्र की स्थापना
- कृषक उपयोगी साहित्य प्रकाशन
- विश्वविद्यालय द्वारा विकसित विभिन्न तकनीकियों का संकलन एवं प्रदर्शन

स्वामी प्रकाशक : डॉ. एस.के. जैन, निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Website : https://aukota.org
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com
दूरभाष : **0744- 2326727**

पुस्त प्रेष्य _____

स्वामी निदेशक प्रसार शिक्षा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा प्रकाशक डॉ. एस.के. जैन, मुद्रक श्री जमील अहमद, मैसर्स डायमण्ड प्रिन्टर्स, शॉप नं. 2, काली मस्जिद के पास, नई धानमण्डी, कोटा से मुद्रित एवं निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, बोरखेड़ा, कोटा, राज. से प्रकाशित, संपादक डॉ.एस.के. जैन

अभिनव कृषि

वर्ष–4 अंक–1 मार्च–2022 पृष्ठ संख्या : 49

संरक्षक

प्रोफेसर डी.सी. जोशी
कुलपति, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक मण्डल

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक प्रसार शिक्षा
प्रधान संपादक एवं प्रकाशक

डॉ. के.सी.मीना
सह आचार्य (प्रसार शिक्षा)
संपादक एवं समन्वयक

डॉ. राकेश कुमार बैरवा
सह आचार्य (शस्य विज्ञान)
संपादक

डॉ. डी.के. सिंह
आचार्य (उद्यान विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. महेन्द्र सिंह
आचार्य (पशुपालन)
सह–संपादक

डॉ. सेवाराम रूण्डला
विषय विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
सह–संपादक

श्रीमती गुंजन सनाढ्य
विषय विशेषज्ञ (गृह विज्ञान)
सह–संपादक

सुश्री सरिता
तकनीकी सहायक
सह–संपादक

मनोनीत सलाहकार मण्डल

डॉ.प्रताप सिंह
निदेशक, अनुसंधान

डॉ. आई.बी. मौर्य
अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़

डॉ. एम.सी. जैन
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, कोटा

डॉ. मुकेश चन्द गोयल
निदेशक, पी.एम.एण्ड.ई.

सदस्यता शुल्क

- ☞ त्रैमासिक (प्रति अंक) 30 रू.
- ☞ वार्षिक (चार अंक) 100 रू
- ☞ आजीवन (15 वर्ष)1000 रू.

विज्ञापन दरें

(i)	अन्तिम सम्पूर्ण (रंगीन)	रू. 10,000/-
(ii)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे (रंगीन)	रू. 6,000/-
(iii)	अन्तिम आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 5,000/-
(iv)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 3,000/-
(v)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 4,000/-
(vi)	अन्दर का आधा पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 2,000/-

नोट : यदि विज्ञापन वर्ष के सभी चार अंकों के लिए दिया जाता है तो उपरोक्त दरों में 25 प्रतिशत की कमी की जायेगी।

सदस्यता एवं नवीनीकरण हेतु

खाता धारक	: DEE, Agriculture University, Kota
बैंक	: ICICI BANK, Nayapura, Kota
खाता संख्या	: 687801700345
IFSC	: ICIC0006878

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

"अभिनव कृषि"
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
बोरखेड़ा, बारां रोड़ कोटा (राजस्थान) – 324001
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com दूरभाष : 0744- 2326727

प्रकाशक: प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
मुद्रक : डामयण्ड प्रिन्टर्स, नई धानमण्डी, कोटा (राज.) मो. 9414231079

नोट– "अभिनव कृषि" में आलेख प्रकाशन हेतु लेखकों का सदस्य होना अनिवार्य है।

अभिनव कृषि

वर्ष–4 अंक–1 मार्च–2022

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	ग्रीष्मकालीन मूंगः आय एवं मृदा स्वास्थ्य के लिए बेहतर विकल्प जगदीश प्रसाद तेतरवाल, बलदेव राम, अंजू बिजारणियाँ एवं राजेश कुमार	1-3
2.	नेटहाउस में खीरे की खेती हनुमान सिंह, हेमराज छीपा एवं अनिल कुमार गुप्ता	4-6
3.	कद्दूवर्गीय सब्जियों की नवीनतम तकनीकियां अपनाकर अधिक लाभ कमाऐं बी.एल. आसीवाल, सुनिल कुमार मीणा एवं रमेश चन्द्र आसीवाल	7-9
4.	आधुनिक तकनीक से सब्जी पौध उत्पादन बबलू गोस्वामी, मूमल भारद्वाज एवं हर्षवर्धन भारद्वाज	10-12
5.	फूलो की खेती में पादप वृद्धि नियामक की भूमिका हेमराज छीपा, अनिल कुमार गुप्ता एवं हनुमान सिंह	13
6.	मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन तकनीक राजेंद्र कुमार यादव, वी. के. यादव, बलदेव राम एवं एस. एन. मीना	14-17
7.	टिकाऊ खेती में नैनो उर्वरक की भूमिका राजेश कुमार, खजान सिंह, बलदेव राम एवं वर्षा गुप्ता	18-19
8.	मृदा में बोरान और मोलिबिडनम की उपयोगिता बृजेश यादव एवं पी. के. गुप्ता	20-21
9.	स्वयं सहायता समूह एवं सहकारी समितियों का गठन एवं महत्व मोहम्मद युनुस, अर्जुन कुमार वर्मा, अरविन्द नागर एवं सेवाराम रुन्डला	22-23
10.	जैविक कृषि में वर्मी खाद का महत्व और उत्पादन तकनीकी मूमल भारद्वाज, बबलू गोस्वामी, हर्षवर्धन भारद्वाज एवं एम. सी. जैन	24-25
11.	किसानों की आय बढाने में बीज भण्डारण का महत्व कपिल कुमार नागर, उदिति धाकड, एस.एल.यादव एवं प्रताप सिंह	26-28
12.	फसलों की कटाई उपरान्त प्रबंधन से किसान बढ़ा सकते है अपनी कृषि आय गिरधारी लाल मीना, के. सी. मीना एवं नारायण लाल मीना	29-30
13.	किसान अपनी उत्पादन लागत कैसे कम करे सुनील कुमार, पूनम कश्यप, पीयूश पूनिया एवं अमृतलाल मीणा	31
14.	वेस्ट डीकम्पोजर : घटेगी कृषि लागत एवं बढ़ेगी पैदावार सुभाष असवाल, के.सी. मीना एवं सुनिल कुमार	32
15.	डेयरी पशुओं पर प्लास्टिक का दुष्प्रभाव नेहा सिंह, खुशबू राज, दीपक चन्द मीना एवं एच. आर. मीना	33
16.	राजस्थान की कृषि में चुनौतियॉ एवं समाधान भैरु लाल कुम्हार, भरत राज मीना, मन्जू एवं उदिति धाकड	34-35
17.	अल्प–शोषित करोंदा फल का मूल्यवर्धनः ग्रामीण लोगो के लिए एक कमाई का अवसर महावीर सुमन एवं रूपसिंह	36
18.	सीड बॉल्सः वन जीर्णोद्धार एवं जैव विविधता संरक्षण का सरल तरीका राजेश कुमार शर्मा, अरविंद नागर, भुवनेश नागर एवं राजेंद्र कुमार यादव	37
19.	फसल चक्र में बदलाव–आज की आवश्यकता योनिका सैनी, उदिति धाकड़, बी.एस.मीणा एवं प्रताप सिंह	38-39
20.	मिट्टी का सुधार–अच्छी फसल का आधार उदिति धाकड़, राजेन्द्र यादव, योनिका सैनी एवं बलदेव राम	40-41
21.	हरी पत्ते वाली सब्जियों की व्यावसायिक खेती राजेश चौधरी, अशोक चौधरी एवं सुरेश कुमार जाट	42
22.	टमाटर की फसल में एकीकृत कीट प्रबंधन हनुमान सिंह, हेमराज छीपा एवं अनिल कुमार गुप्ता	43-44
23.	हल्दी की व्यावसायिक खेती अशोक चौधरी, राजेश चौधरी एवं सुरेश कुमार जाट	45
24.	बेल (बीलपत्र) की खेती का उन्नत उत्पादन रामसिंह चौधरी, मनोज कुमार, हेमन्त गुर्जर एवं बी.एल. नागर	46
25.	कद्दूवर्गीय सब्जियों में कीट प्रबंधन हनुमान सिंह	47-49

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक (प्रसार शिक्षा)

Directorate of Extension Education
प्रसार शिक्षा निदेशालय
AGRICULTURE UNIVERSITY, KOTA
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Borkhera, Baran Road, Kota 324 001 (Raj.)
बोरखेडा, बारां रोड, कोटा 324001 (राज.)

प्रधान संपादक की कलम से.....

प्रगति के सुनहरे अतीत पर खड़ा भारतीय कृषि क्षेत्र देश की अर्थ व्यवस्था में सदैव ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। कृषि हमारे आर्थिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का माध्यम रही है। इस समय कृषक बन्धु अपनी फसलों की कटाई, गहाई तथा भण्डारण में व्यस्त है। दूसरी ओर इस समय जायद व ग्रीष्म कालीन फसलों जैसे मूंग, उड़द, एवं सब्जीयों की खेती की तैयारी चल रही है। जिससे कृषकों को अतिरिक्त आय प्राप्त होगी।

जैसा कि अनुमान है भण्डारित अनाज का 10 प्रतिशत कीटों, फफूँदों से खराब हो जाता है, जिससे प्रतिवर्ष हमारे देश को करोड़ो रूपये का नुकसान होता है। अतः उम्मीद करता हूं कि किसान भाई कटाई उपरान्त प्रौद्योगिकी जैसे गहाई, सुखाना, सफाई, छटाई, पैकिंग, शीतलन, भण्डारण व विपणन के उन्नत तरीके इत्यादि पर ध्यान देगें। जिससे अपनी उपज से अच्छी आय प्राप्त कर सकेगें।

पत्रिका के इस अंक में लेखकगणों से प्राप्त कृषि सम सामयिकी जैसे ग्रीष्मकालीन मूंग, विभिन्न सब्जियों की उन्नत तकनीकियां, मृदा स्वास्थ, कटाई उपरान्त प्रौद्योगिकी, बीज भण्डारण इत्यादि को सम्मिलित किया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि अभिनव कृषि का यह अंक कृषि से जुड़े प्रसार कार्यकर्ता तथा कृषकों के लिए अत्यन्त लाभकारी होगी। पत्रिका के प्रकाशन हेतु संपादक मण्डल के सभी सदस्यों को हार्दिक बधाई एवं लेखकों को शुभकामनायें देता हूं।

(एस.के. जैन)

ग्रीष्मकालीन मूंग: आय एवं मृदा स्वास्थ्य के लिए बेहतर विकल्प

जगदीश प्रसाद तेतरवाल, बलदेव राम, अंजू बिजारणियाँ एवं राजेश कुमार
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज कोटा एवं यांत्रिकी कृषि फार्म, उम्मेदगंज कोटा, राजस्थान

भारतीय कृषि में दलहनी फसलों का महत्तवपूर्ण योगदान है तथा प्रोटीन के स्त्रोत के रुप में भोजन को पौष्टिक एवं स्वादिष्ट बनाती है। टिकाऊ खेती हेतु यह वायुमंडलीय नत्रजन को भूमि में स्थिर कर भूमि की उवर्रा शक्ति को बढाती है। मूंग के क्षेत्रफल तथा उत्पादन की दृष्टि से भारत का विश्व में प्रथम स्थान है। मूंग एक दलहनी फसल होने के कारण भूमि में नाइट्रोजन का स्थरीकरण करती है और आगामी फसल के लिए मृदा में नाइट्रोजन छोड़ती है। मूंग की फलियों की तुड़ाई के बाद इसे जुताई करके हरी खाद के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है। मूंग में लगभग 20–25 प्रतिशत उच्च मूल्यांकन प्रोटीन पायी जाती है एवं इसका हरा चारा स्वादिष्ट, पाचक व उच्च प्रोटीन वाला होता है। अंकुरित मूंग के दानों में पर्याप्त मात्रा में एस्कोर्बिक अम्ल (विटामीन सी) पाया जाता है एवं इसमें राइबोफ्लोविन व थायमिन की मात्रा भी पायी जाती है।

जलवायु: मूंग की फसल को अधिक तापमान, कम नमी एवं मध्यम वर्षा (60–80 से.मी.) वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगायी जाती है। इसके अच्छे अंकुरण के लिये 20–25 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान तथा बढवार व फली बनने हेतु 25–30 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान की आवश्यकता होती है। मूंग मुख्य रुप से खरीफ व जायद मौसम में उगाई जाने वाली दलहनी फसल है इसमे सूखा सहन करने की क्षमता अधिक होती है। जल भराव, भारी वर्षा एवं ओलावृष्टि फसल पकाव के समय काफी नुकसान पहुंचाती है।

मृदा का चुनाव एवं तैयारी: मूंग की खेती हेतु हल्की से दोमट, लवण व क्षार रहित एवं मृदा का पी.एच. मान 6.5–7.5 अधिक उपयुक्त रहती है तथा अधिक अम्लीय एवं ऊसर मृदायें अनुपयुक्त पाई गई है। मूंग की फसल को सामान्यत: बहुत अच्छे खेत तैयार की आवश्यकता नही होती है। एक गहरी जुताई के बाद क्रास हैरोंइग तथा पाटा लगाने से खेत तैयार हो जाता है। खेत की अन्तिम जुताई के समय क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि में बुवाई से पूर्व मिलाना चाहिए या प्रति किलो बीज में 10 मिलीलीटर क्यूनॉलफॉस 25 ई. सी. मिलाकर बीजोपचार करें। भूमिगत कीडों एवं दीमक की रोकथाम के लिए बुवाई से पूर्व भूमि उपचार करना आवश्यक है ।

उन्नत किस्में: मूंग की अधिक उत्पादन लेने हेतु सदैव उन्नत किस्म के बीजों को ही बुवाई के लिये काम में लेना चाहिए। किस्मों का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना अति आवश्यक है कि अधिक उत्पादन के साथ–साथ ये किस्में रोग प्रतिरोधी तथा उस क्षेत्र की जलवायु के लिए प्रयुक्त हो।

1. आई.पी.एम. 02–3 : यह किस्म खरीफ व जायद दोनों के लिए उपयुक्त पाई गई है। यह 68–70 दिनों में पककर 10–12 क्विं./है0 तक उपज देती है। यह किस्म पीत चितेरी रोग से अवरोधी पायी गयी है।

2. पी.डी.एम. 139 (सम्राट) : यह किस्म जायद के लिए उपयुक्त पायी गई है। यह किस्म 65–70 दिनों में पककर 6–8 क्विं./है0 औसत उपज देती है। यह किस्म भी पीत चितेरी रोग से अवरोधी पायी गयी है।

3. के 851 : यह किस्म 60 से 70 दिन में पककर 8 से 10 क्वि. प्रति है. उपज देती है।

तालिका : 1 ग्रीष्म कालीन मूंग की अन्य उपयुक्त उन्नत किस्में एवं अवधि

किस्म	औसत उपज (क्विं/है.)	अवधि (दिन)
सीओ–6	10-11	65-68
प्रताप (एसजीआई)	12-14	65-70
पूसा 9531	9-10	60-62
पूसा विशाल	12-15	62-65
पूसा बैसाखी	8-10	60-65
एचयूएम 2 (मालविया जागृति)	10-11	67-69
सम्राट	10-12	60-65

एचयूएम 2 (मालविया जनचेतना)	11-12	60-62
एसएमएल–668	11-13	60-62
पंत मूंग 5	14-15	-
मेहा (आईपीएम 99–125)	9-10	66-68
टीएमबी 37	11-12	65-67
एचयूएम 16 (मालविया जनकल्याणी)	10-11	55-58
आईपीएम 02–14	11-13	60-65
एसएमएल–832	10-11	60-65
एमएच 421	12-13	60-62
आईपीएम 410–3	11-13	60-65

Source:- Gupta, S. and Pratap, A., 2016, Mungbean-Summer cultivation in India, AICRP on MULLaRP, IIPR, Kanpur

4. पी डी एम : 11 : 60 से 65 दिन में पककर यह किस्म 10 से 12 क्विंटल प्रति हैक्टर उपज देती है।

ग्रीष्मकालीन मूंग के लिए उपयुक्त अन्य उन्नत किस्मों का विवरण तालिका 1 में दर्शाया गया है।

बीजोपचार: बीज को बुवाई से पूर्व कार्बेण्डाजिम 1.0 ग्राम या थाइरम 3.0 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। बीजों को सदैव राइजोबियम एवं फॉस्फोरस घोलक जीवाणु (पी.एस.बी.) का 600 ग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से उपचारित कर बुवाई करें।

बुवाई का समय : ग्रीष्मकालीन मूंग की बुवाई मार्च से अप्रैल के मध्य की जाती है इसकी बुवाई 25 मार्च से 10 अप्रैल तक कर देनी चाहिए। इस अवधि के बाद बुवाई करने पर पुष्पन अवस्था पर अधिक तापमान के कारण फलियाँ कम बनती है। इस कारण उपज प्रभावित होती है।

बीज दर एवं बुवाई विधि: मूंग की अच्छी पैदावार लेने के लिए पौधों की उचित दूरी पर बुवाई करना आवश्यक होता है। सामान्यतः इसकी बुवाई के लिए पंक्ति से पंक्ति के बीच की दूरी 30 से.मी. रखनी चाहिए। बीज की 3–4 से.मी. की गहराई पर बुवाई करनी चाहिए।

मूंग की अच्छी पैदावार के लिए 22–25 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर उपयुक्त रहता है। मूंग को नमी संरक्षण एवं अधिक उत्पादन हेतु वृहत क्यारी विधि (बीबीएफ) द्वारा भी लगाया जा सकता है।

ग्रीष्मकालीन मूंग आधारित फसल चक्र: मूंग में अल्पअवधि किस्मों का विकास होने से इसको अधिक आय एवं मृदा स्वास्थ्य के लिए विभिन्न फसल पद्धतियों में लगाया जा सकता है। जैसे मक्का– धानियां – ग्रीष्मकालीन मूंग गन्ना /आलू / कपास/ सरसों–ग्रीष्मकालीन मूंग, ग्रीष्मकालीन मूंग–मक्का/ धान–सरसों/गेंहूँ, ग्रीष्मकालीन मूंग –मक्का–आलू, ग्रीष्मकालीन मूंग–सरसों/गेंहूँ, ग्रीष्मकालीन मूंग–खरीफ मूंग–सरसों/गेंहूँ, जो कि फसल विविधिकरण के लिए लाभकारी है।

खाद एवं उर्वरक: दलहनी फसल होने के कारण प्रारम्भ की अवस्था में 20 किलो नत्रजन व 40 किलो फास्फोरस प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व कूडों में ऊर कर देवें तथा फसल बाद में जड़ों में उपस्थित जीवाणु इसकी पूर्ति वायुमण्डल से नत्रजन स्थिरिकरण से कर लेते है। पोटाश एवं जस्ता मृदा परीक्षण के आधार पर दें। मिट्टी की जॉच के अनुसार गंधक की कमी वाली भूमि में प्रतिवर्ष 250 किलोग्राम जिप्सम या 20 किलोग्राम सल्फर प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय भूमि में (गंधक उर्वरक के रुप में) देने से उपज में वृद्वि होती है। जस्ते की कमी वाली मृदाओं में 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय भूमि में डाले या खडी फसल में 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट + 0.25 प्रतिशत चूने के घोल का छिडकाव करने से उपज में वृद्वि होती है ।

सिंचाई : ग्रीष्मकालीन मूंग की फसल को 4–5 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। बुवाई के बाद पहली सिंचाई 18–20 दिनों पर, दूसरी सिंचाई 30–35 दिनों पर और आवश्यकता पड़ने पर 42 से 48 दिनों पर तीसरी सिंचाई कर देनी चाहिए। मौसम और मृदा की किस्म

के आधार पर सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है अर्थात 12 से 15 दिनों के अंतराल में सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। शाखा व फलियां बनते समय तथा दाना भरते समय सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। फसल में जल दक्षता बढ़ाने के लिए फव्वरा विधि द्वारा सिंचाई करें। ग्रीष्मकालीन मूंग में कई बार सिंचाई हो जाने के कारण खेत में खरपतवार अधिक उग जाती है, जिनको समय–समय पर खेत से उखाड़कर निकाल देना चाहिए।

निराई–गुडाई एवं खरपतवारों की रोकथाम: उत्पादकता में कमी को रोकने हेतु मूंग को खरपतवारों से मुक्त रखना आवश्यक है। फसल को 25–40 दिन की अवस्था तक दो बार खुरपी से निराई–गुडाई करके खरपतवारों से मुक्त रखें। रासायनिक नियंत्रण के लिए बुवाई के बाद तथा अंकुरण के पूर्व पेंडिमिथेलीन 0.75 कि.ग्रा. या एलाक्लोर 50 ई. सी. 1.0 लीटर (सक्रिय अवयव) प्रति हैक्टेयर की दर से 600–700 लीटर पानी में घोलकर फ्लेट फेन नोजल से छिड़काव करें। खड़ी फसल में खरपतवार नियंत्रण के लिए इमेजाथापर 10 ई.सी. 100 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से फसल की 15–20 दिनों की अवस्था पर छिड़काव करना चाहिए।

फसल संरक्षण: उत्पादकता बढाने के लिये फसलों का जैविक एवं अजैविक कारकों से बचाव अत्यन्त आवश्यक है। समेकित रोग व कीट प्रबन्धन जिसमें रोगरोधी प्रजातियों का प्रयोग, स्वस्थ बीजों का प्रयोग, कर्षण क्रियाओं में बदलाव, कवकनाशी तथा जैवनाशी तत्वों का प्रयोग कर उत्पादकता को स्थिर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है।

प्रमुख कीट एवं उनका नियंत्रण : मूंग में मोयला, हरा तेला, तना मक्खी, फली छेदक, ब्लेक लीफ वीविल एवं ब्ल्यू बीटल कीटों का प्रकोप में अधिक होता है। कीट प्रबन्धन हेतु स्वस्थ बीजों का प्रयोग, कर्षण क्रियाओं में बदलाव तथा कीटनाशी दवाओं का प्रयोग कर उत्पादकता को बढाया जा सकता है।

प्रमुख रोग एवं उनका नियंत्रण : मूंग में जड़ गलन, चित्ती जीवाणु रोग, सरकोस्पोरा पत्ती धब्बा रोग, पीत्तशीरा विषाणु (मोजेक), क्रिकल विषाणु, छाछ्या एवं पीलिया रोग का प्रकोप खरीफ ऋतु में अधिक होता है। रोग प्रबन्धन हेतु रोगरोधी प्रजातियों के साथ –साथ स्वस्थ बीजों का प्रयोग, कर्षण क्रियाओं में बदलाव तथा कवकनाशी व जैवनाशी दवाओं का प्रयोग कर मूंग का अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।

कटाई व मड़ाई : मूंग की फसल अधिक पक जाने पर या सूख जाने पर फलियां झडने लगती है जिससे उपज में काफी नुकसान उठाना पडता है। फलियों के झड़कर गिरने से होने वाली हानि को रोकने के लिये फलियों को पूरी तरह पकने के बाद एवं झडने से पहले काट लेवे। इसके बाद खलिहान में फसल को लगभग एक सप्ताह तक धूप में सुखाकर बैलों अथवा थ्रेसर द्वारा मड़ाई करके भूसा उड़ाकर दाना अलग कर ले तथा दानों को इतना सुखा ले कि नमीं की मात्रा 12 प्रतिशत से अधिक न हो।

उपज : उन्नत कृषि विधियाँ अपनाकर मूंग की उपज लगभग 10–12 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है। मूंग की खेती से मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ने के साथ–साथ पड़त जमीन का भी अच्छा उपयोग हो सकता है। बाजार में इसकी अधिक कीमत भी मिलती है। इस प्रकार 60 से 70 दिनों में 1 हेक्टेयर में 18000–20000 रू. की लागत से 40000–45000 रू. की आय प्राप्त की जा सकती है। अतः उन्नत तरीके से ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती कर अधिक लाभ अर्जित किया जा सकता है।

ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती की अन्य फायदे।

- वातावरणीय नाइट्रोजन का स्थरीकरण कर मृदा में नाइट्रोजन की आपूर्ति बढ़ाना।
- मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ाना।
- मृदा की संरचना में सुधार।
- खेती की लागत कम करने में सहायक।
- मृदा की जैविक क्रियाशीलता को बढ़ाना।
- जल प्रवाह व मृदाक्षरण को कम करना।
- पोशक तत्वों की प्राप्यता को बढ़ाना।
- मृदा में वायु संचार अच्छा करना।
- खरपतवारों को कम करने में सहायता।

ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती किसानों कि आय में बढ़ोतरी के साथ–साथ मृदा स्वास्थ्य, वातावरण सुरक्षा व पोषण सुरक्षा में भी सहायक है, अतः ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती को बढ़ावा देने कि आवश्यकता है।

नेटहाउस में खीरे की खेती

हनुमान सिंह, हेमराज छीपा एवं अनिल कुमार गुप्ता
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान

खीरा एक बहुत ही महत्वपूर्ण कद्दूवर्गीय फसल है और सलाद के रूप में प्रचलित है। खीरे में उभयलिंगी किस्में मुख्यतौर पर फरवरी–मार्च तथा जून–जूलाई में खुले वातावरण में उगाई जाती है। खुले वातावरण में बेलें जमीन पर रहने से फसल में कीट व रोगों का प्रकोप अधिक रहता हैं। उभयलिंगी किस्मों में कड़वे परागकणों से परागण होने पर अक्सर फल भी कड़वा प्राप्त होता है। हमारे देश में विगत एक दशक से खीरे की बीजरहित (पार्थेनोकार्पिक) किस्मों का प्रचलन बढ़ा है। इन किस्मों का उत्पादन वर्तमान में संरक्षित खेती में वर्षभर किया जा सकता है। राजस्थान में बाजार की मांग का देखते हुए संरक्षित संरचनाओं में वर्ष में खीरे की तीन फसलें ली जा सकती हैं।

कीट अवरोधी नेटहाउस बनाने के लिए 1.5–2.5 इंच मोटाई के जी.आई. पाइपों को जमीन में गाड़कर ऊपर से पराबैंगनी प्रकाश से बेअसर 40 मेश आकार के कीट अवरोधी जाल से ढका जाता है। नेटहाउस के निकास पर दो दरवाजे बनाकर दोनों के बीच में पर्याप्त जगह संक्रमण अवरोधक के रूप में छोड़ी जाती है। कीट अवरोधी नेट एवं दो दरवाजों के कारण नेटहाउस में कीट आसानी से प्रवेश नही कर पाते। नेटहाउस में मौसमानुसार प्रकाश नियमन के लिए 40 प्रतिशत छाया क्षमता का मोनो–नेट लगाया जाता है, जिसे गर्मियों में दिन के समय फैलाकर बाहर से आने वाली धूप को रोककर अंदर 40 प्रतिशत तक छाया की जा सकती है। सर्दी के मौसम में यह दिन में खोला जा सकता है। शाम के समय इसे बन्द किया जा सकता है, ताकि दिन के समय नेटहाउस के अंदर अर्जित गर्मी को रात के समय उपयोग करके पौध की कम तापमान से रक्षा की जा सके।

मृदा की तैयारी : मृदा की 2–3 बार अच्छी तरह जुताई कर अंतिम जुताई के बाद 3–4 टन सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति 1000 वर्ग मीटर क्षेत्र की दर से मृदा में मिलाकर मृदा को समतल किया जाता है। नेटहाउस में दीमक व लाल चींटियों के नियंत्रण के लिए अंतिम जुताई से पहले प्रति 1000 वर्ग मीटर की दर से जैव–उर्वरक के रूप में एजोस्पिरिलम एवं फॉस्फोबैक्टीरिया 200 ग्राम और स्यूडोमोनास 250 ग्राम तथा मृदाजनित फफूंद के नियंत्रण के लिए 1 कि.ग्रा. नीम की खली के साथ अंतिम जुताई के बाद मृदा में मिलाएं।

विभिन्न मृदाजनित रोगों व कीटों का संक्रमण होने पर बुआई/पौध रोपाई से पूर्व भूमि की गहरी जुताई करके सौरीकरण द्वारा मृदा का निर्जमीकरण करें। इसके अतिरिक्त मृदा धूमक रासायनिक पदार्थ फार्मेलिन (37 प्रतिशत) को 60–80 लीटर प्रति 1000 वर्ग मीटर की दर से भूमिगत ड्रिप पंक्तियों द्वारा 1 फीट गहराई तक उपचार कर 3 सप्ताह के लिए मृदा को पारदर्शी पॉलीथीन से ढकना चाहिए। मृदा निर्जमीकरण के बाद कीट अवरोधी नेटहाउस में पौध रोपाई के लिए जमीन से 15–20 सें.मी. उठी हुई 80–90 सें.मी. चौड़ाई की

तालिका:1 नेटहाउस में खीरा के लिए उचित दशायें

अंकुरण के लिए उचित मृदा तापमान	20–25 डिग्री सेल्सियस
वृद्धि के लिए उचित तापमान	25–30 डिग्री सेल्सियस
बुआई के लिए बाधक तापमान	15 डिग्री सेल्सियस से कम तापमान
बीज से पौध बनने की अवधि	2–3 सप्ताह
वानस्पतिक वृद्धि से पुष्पण अवधि	3–4 सप्ताह
पुष्पण से फलन अवधि	3–4 सप्ताह
तुड़ाई की अवधि	2–3 महीने तक
आदर्श मृदा पी–एच मान	6.5 से 7.5
नेटहाउस की आंतरिक आर्द्रता	60–70 प्रतिशत
लवणता सहिष्णुता	मध्यम

क्यारियां लगभग 50 सें.मी. की दूरी पर बनाकर प्रत्येक क्यारी में दो ड्रिप पाइपों को 40–50 सें.मी. दूरी पर डाला जाता है।

उन्नत किस्में: विभिन्न ऋतुओं के लिए उपयुक्त खीरे की बीजरहित किस्में तालिका –2 में दी गई हैं।

फसलचक्र	महिना	उपयुक्त किस्में
प्रथम	अप्रेल–जुलाई	अविवा, अस्मा, रूचि, कियान
द्वितीय	सितंबर–दिसम्बर	अविवा, अस्मा, मल्टीस्टार, पूसा सीडलैस खीरा–6, रूचि, सेटिस
तृतीय	दिसम्बर–अप्रेल	हिल्टन, रूचि, अविवा, कियान

पौध तैयार करना: स्वस्थ पौध तैयार करने के लिए संरक्षित संरचना जैसे कीट अवरोधी नेटहाउस व नर्सरी हरितगृह में प्लग–ट्रे में मृदारहित माध्यम, जिसमें कोकोपीटः वर्मीकुलाइट व परलाइट का 3:1:1 अनुपात का मिश्रण आयतन के आधार पर भरकर ट्रे के प्रत्येक छेद में एक बीज लगाकर अंकुरण के लिए 24 से 25 डिग्री सेल्सियस तापमान पर रखा जाता है। पौधे की प्रारम्भिक अवस्था में जल व पोषक तत्व घूलनशील उर्वरक जैसे–नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश, जिनमें सूक्ष्म पोषक तत्व भी मिले हों, को 1:1:1 अनुपात में मिलाकर फर्टिगेशन के रूप में दिया जाता हैं। फर्टिगेशन की शुरूआत बीज अंकुरण के 2–3 दिनों बाद की जाती है। आमतौर पर पहले सप्ताह में 50 पीपीएम, दूसरे सप्ताह सप्ताह 100 पीपीएम, तीसरे सप्ताह 150 पीपीएम और चौथे सप्ताह में 200 पीपीएम स्तर पर फर्टिगेशन दी जाती है। सर्दी के मौसम में खीरे की पौध 28–30 दिनों में तथा गर्मी के मौसम में 20–25 दिनों में रोपाई योग्य हो जाती हैं।

बुआई व पौध रोपाई : खीरे की वर्षभर खेती के लिए पहली एवं दूसरी फसल की सीधी बुआई तथा तीसरी फसल की दिसंबर में पौध तैयार कर रोपाई की जाती है। खीरे की प्रथम फसल की बुआई अप्रैल के तीसरे सप्ताह तथा दूसरी फसल की बुआई अगस्त के दूसरे सप्ताह में जबकि तीसरी फसल की रोपाई जनवरी के प्रथम या द्वितीय सप्ताह में की जा सकती है। खीरे की बुआई के लिए बीजों को पहले से बनी क्यारियों पर ड्रिप लाइनों के समानांतर 30 सें.मी. दूरी पर 2–2.5 सें.मी. पर गहरा बोना चाहिए।

कटाई–छंटाई व सहारा देना: पौधों की संधाई व सहारा देने के लिए ड्रिप पंक्तियों के समानान्तर जमीन से 8–9 फिट ऊपर लोहे के तार बांधे जाते हैं। प्रारंभ में पौधे की पार्श्व शाखाओं की कटाई–छंटाई करके मुख्य तने को सुतली या प्लास्टिक के धागों के सहारे लपेटते हुए ऊपर की ओर बढ़ने दिया जाता हैं। जैसे–जैसे पौधे का तना बढ़ता जाता है वैसे–वैसे पौधों को सुतली पर चढ़ाते हुए ओवरहेड तार की ऊंचाई तक पहुंचाकर फिर से पौधे को नीचे की दिशा में घुमा दिया जाता है।

सिंचाई व उर्वरक: कीट अवरोधी नेटहाउस में बूंद–बूंद सिंचाई विधि से पानी की बचत के साथ ही घुलनशील उर्वरकों के स्टॉक घोल की सिंचाई जल के साथ विभिन्न अवस्थाओं पर विभिन्न अनुपात में मिलाकर तालिका–3 में दर्शाए अनुसार फर्टिगेशन द्वारा दिया जा सकता है। फर्टीगेशन में सामान्यतः नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश के घुलनशील उर्वरकों का 5:3:5 अनुपात में घोल बनाकर विभिन्न अवस्थाओं पर विभिन्न मात्रा में दिया जाता है।

फलों की तुड़ाई : खीरे में फलों की तुड़ाई तब की जाती है, जब फल कमोबेश बेलनाकार होकर अच्छी तरह से भर जाएं। फलों की तुड़ाई सुबह के समय करनी चाहिए। बीजरहित खीरे की छाल कोमल होती है। इसलिए तुड़ाई योग्य फलों को किसी भी प्रकार की चोट–खरोंच से बचाने के लिए कैंची या चाकू की सहायता से भी काटा जा सकता है।

तालिका:3 खीरे की संरक्षित खेती में संतुलित उर्वरक अनुप्रयोग एवं अवस्था (प्रति 1000 वर्गमीटर क्षेत्र में)

फसलचक्र / उर्वरक का समय	संद्रता (पीपीएम)			(उपज क्विं)
	नाईट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाश	
प्रथम फसलचक्र (अप्रैल–जुलाई)				40–50
वानस्पतिक अवस्था (अप्रैल)	120	60	120	
पुष्पण एवं तुड़ाई अवस्था (मई–जुलाई)	180	80	200	
द्वितीय फसलचक्र (सितंबर–दिसंबर)				60–70
वानस्पतिक अवस्था (सितंबर)	160	80	160	
पुष्पण एवं तुड़ाई अवस्था (अक्टूंबर–दिसंबर)	220	80	240	
तृतीय फसलचक्र (दिसंबर–अप्रैल)				50–60
वानस्पतिक अवस्था (दिसंबर–जनवरी)	120	60	120	
पुष्पण एवं तुड़ाई अवस्था (फरवरी–अप्रैल)	180	60	200	

उपज: 1000 वर्गमीटर क्षेत्र से मात्र 3 से 4 महीने में 30–40 क्विंटल खीरा उत्पादन किया जा सकता है।

रोग प्रबंधन

आर्द्रगलन : इस रोग का प्रकोप नर्सरी अवस्था में होता है। रोकथाम के लिए पौध रोपाई से पूर्व बाविस्टीन से मृदा उपचार कर, बाविस्टीन (2 ग्राम/लीटर पानी) या ट्राइकोडर्मा विरिडी (3 ग्राम/लीटर पानी) नामक फफूंदनाशी से बीजों को उपचारित करके बोयें।

विषाणुजनित रोग: यह रोग सफेद मक्खी तथा माहूं नामक कीट से फैलता हैं। रोकथाम के लिए डाइमिथोएट, ओबेरान, ओवेमाइट, नीमगोल्ड आदि दवाओं को 1 चम्मच प्रति 2 लीटर पानी में मिलाकर 2–3 बार 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।

उकठा: यह एक फफूंदजनित रोग है, जिसमें पत्ते पीले पड़कर मुरझाने से पौधों की वृद्धि रूक जाती है। रोकथाम के लिए बुआई या पौध रोपई से पूर्व फार्मेल्डिहाइड, नीम की खली एवं बाविस्टीन से मृदा उपचार के साथ ही बाविस्टीन (2 ग्राम/लीटर पानी) या ट्राइकोडर्मा विरिडी (3 ग्राम/लीटर पानी) नामक फफूंदनाशी दवा से बीजों या पौध को उपचारित करें।

सूत्रकृमि: सूत्रकृमि पौधों की जड़ों में घुसकर जड़ों को छोटी–छोटी गांठों के रूप में फुला देता है। रोकथाम के लिए मृदा को नीम की खली या कार्बोफ्यूरॉन (6 ग्राम/वर्गमीटर) से उपचारित करके पारदर्शी पॉलीथीन से 10–15 दिनों के लिए ढककर सौरीकरण क्रिया करनी चाहिए।

कीट प्रबंधन

माइट (बरूथी): पत्तियों पर जाले दिखाई देने पर प्रभावित पत्तियों को निकालकर ओबेरोन 0.6 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

थ्रिप्स व सफेद मक्खी: थ्रिप्स व सफेद मक्खी से पत्तियां एवं शिराएं पीली पड़ने से पौधे की वृद्धि रूक जाती है। प्रकोप होने पर एसिफेट 1 ग्राम प्रति लीटर या इमिडाक्लोप्रिड 0.5 ग्राम प्रति लीटर का छिड़काव करें।

माहूं: इसका इमिडाक्लोप्रिड 0.5 ग्राम प्रति लीटर के छिड़काव से प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है।

पर्ण सुरंगक कीट: इसके नियंत्रण के लिए कोरेजन 0.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

इस प्रकार कीट अवरोधी नेटहाउस में खीरें की वर्षभर खेती करके उर्वरकों एवं कीटनाशकों की लागत बचाने के साथ ही प्रति इकाई भूमि, पानी, श्रम एवं समय से अधिक लाभ अर्जित किया जा सकता है।

''अभिनव कृषि'' अंकवार प्रकाशित होने वाली विषय सामग्री

अंक	प्रकाशन माह	विषय–विशेषांक
1	**जून**	खरीफ फसल विशेषांक, खरीफ फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार, प्रबंधन, मृदा एवं जल संरक्षण
2	**सितम्बर**	रबी फसल विशेषांक, रबी फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, उन्नत कृषि उपकरण
3	**दिसम्बर**	सिंचाई प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जैविक खेती, समन्वित कृषि प्रणाली, आधुनिक डेयरी, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
4	**मार्च**	जायद खेती, संरक्षित खेती, हाई–टेक बागवानी, फल–फूल, सब्जी उत्पादन, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल सब्जी परिरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण

कद्दूवर्गीय सब्जियों की नवीनतम तकनीकियां अपनाकर अधिक लाभ कमाऐं

बी.एल. आसीवाल, सुनिल कुमार मीणा एवं रमेश चन्द्र आसीवाल
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

कद्दू वर्गीय सब्जियों का कुल सबसे बड़ा है जिसमें फूल मोनोशियस होते है यानि नर व मादा फूल एक ही पौधे पर अलग–अलग आते है। इन सब्जियों की खेती मौसम व बे–मौसम में की जाती है। विभिन्न रूप, रंग, आकार, स्वाद, उपयोग और पौष्टिक गुणों के कारण ये सभी को आकर्षित करती है। इनकी खेती करना सरल होता है। यही कारण है कि ये सब्जियां घर के आंगन के साथ किचन गार्डन, छप्परों, खेतों और नदियों व तालाबों के किनारों से लेकर शहरों तक बहुतायत से उगायी जाती हैं। कद्दू वर्गीय सब्जियों की उपयोगिता भी भारत में अहम स्थान रखती है। आगरा का पेठा पूरे भारत में प्रसिद्ध है। पेठे का कच्चा फल सब्जी के लिए और पक्का फल मिठाई बनाने के लिए उपयोग किया जाता है। लौकी सुपाच्च होती है, यही कारण है कि चिकित्सक रोगियों को इनकी सब्जी खाने की सलाह देते है। सूखी खांसी और रक्त संचार के रोगों के लिए टिण्डा अत्यन्त गुणकारी सब्जी है। करेले की सब्जी पेट के कीड़ों को मारने के लिए अच्छी होती है व गठिया रोग में भी लाभकारी होती है। इसके अलावा करेले में बहुत से औषधीय गुण विद्यमान रहते है। खीरे को कच्चे नरम अपरिपक्व अवस्था में उस समय खाया जाता है जब वे रस से भरे हुए होते है तथा सलाद के रूप में काम लिया जाता है।

उन्नत किस्में तथा बीजदर

अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु यह अति आवश्यक है कि कद्दू वर्गीय सब्जियों की उन्नत किस्मों का चुनाव किया जाये। स्थानीय किस्मों की बजाय उन्नत व संकरण किस्में अधिक उत्पादन देती है तथा कीट व रोगों के प्रति प्रतिरोधक भी होती है। कद्दू वर्गीय सब्जियों की उन्नत किस्में व बीजदर इस प्रकार हैं–

तालिका : 1 कद्दूवर्गीय सब्जियों की उन्नत किस्में एवं बीजदर

क्र.सं.	फसल	बीजदर (कि.ग्रा./हे.)	उन्नत किस्में
1.	लोकी	4–5	पूसासमर प्रोलिफिक लोंग, पूसामंजरी (संकरगोल), पूसानवीन, आर्काबहार, पूसामेघदूत (संकर लम्बी) पूसासमर प्रोलिफिक राउण्ड,
2.	कद्दू	4–5	पूसा विश्वास, पूसा अलंकार, अर्काचंदन
3.	करेला	4–5	अर्काहरित, पूसा दो मौसमी, प्रिया, ग्रीन लोंग, पूसा विशेष, महिको करेला, कोयम्बटूर लोंग
4.	खीरा	2.0–2.5	बालम खीरा, पाइनसेट, पूसा संयोग (संकर)
5.	टिण्डा	4–5	बीकानेरी ग्रीन, दिलपसंद, हिसार–सलेक्शन–1, अर्काटिण्डा, टिण्डा लुधियाना (एस–48)
6.	ककड़ी	2.0	लखनऊ अगेती, अर्काशीतल
7.	तरबूज	4.0–4.5	शुगरबेबी, आसाहीयामेंटो, दुर्गापुरा मीठा, दुर्गापुराकेसर, अर्काज्योति व मधु (संकर किस्म)
8.	खरबूजा	1.2–2.0	दुर्गापुरा मधु, पंजाब सुनहरी, पंजाब हाईब्रिड, अर्काजीत, हरामधु, पूसा मधुरस, आर एम–43
9.	तुरई	4–5	चिकनी–पूसा चिकनी, धारीदार–पूसानसदार

उर्वरक व खाद : कद्दूवर्गीय सब्जियों की ज्यादातर बेल वाली सब्जियों में खेत की तैयारी के समय 15 से 20 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद, 80 किलोग्राम नत्रजन, 50 किलोग्राम फास्फोरस और 50 किलोग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है।

बीज बुवाई : कद्दूवर्गीय सब्जियों हेतु खेत में लगभग 45 सेंटीमीटर चौड़ी और 30 से 40 सेंटीमीटर गहरी नालियां बना लें। एक नाली से दूसरी नाली की दूरी फसल की बेल की बढ़वार के अनुसार 1.5 मीटर से 4.0 मीटर तक रखें। बुवाई से पहले नालियों में पानी लगा दें, जब नाली में नमी की मात्रा बीज बुवाई के लिए उपयुक्त हो जाए तो बुवाई के स्थान पर मिट्टी भुरभुरी करके 0.50 से 1.0 मीटर की दूरी पर बीज बोएं।

बुवाई का समय : कद्दूवर्गीय सब्जियों की बुवाई फरवरी से मार्च में करते हैं और वर्षा के मौसम के लिए जून के अंत से जुलाई माह में करते हैं।

सिचाई प्रबंधन : कद्दूवर्गीय सब्जियों की फसल का आवश्यकतानुसार समय–समय पर पानी का प्रबंध करें और सिचाई एवं निरा–गुड़ाई नालियों में ही करें।

पॉली हाउस में संरक्षित विधि : कद्दूवर्गीय सब्जियों की उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में गर्मी के मौसम के लिए अगेती फसल तैयार करने के लिए पॉली हाउस में जनवरी माह में झोंपड़ी के आकार का पॉली हाउस बनाकर पौध तैयार कर लेते हैं। पौधे तैयार करने के लिए 15 गुणा 10 सेंटीमीटर आकार की पॉलीथीन की थैलियों में 1:1:1 मिट्टी, बालू और गोबर की खाद भरकर जल निकास की व्यवस्था हेतु सूए की सहायता से छेद कर लेते हैं। बाद में इन थैलियों में लगभग 1 सेंटीमीटर की गहराई पर बीज की बुवाई करके बालू की पतली परत बिछा लेते हैं और झारे की सहायता से पानी लगाते हैं। लगभग 4 सप्ताह के पौधे खेत में लगाने के योग्य हो जाते हैं। जब फरवरी माह में पाला पड़ने का डर से समाप्त हो जाये तो पॉलीथीन की थैली को ब्लेड से काटकर हटाने के बाद पौधे की मिट्टी के साथ खेत में बनी नालियों की मेंड पर रोपाई करके पानी लगाते हैं। इस प्रकार लगभग एक से डेढ़ माह बाद अगेती फसल तैयार हो जाती है, जिससे किसान अगेती फसल तैयार करके ज्यादा लाभ कमा सकता है।

पादप हार्मोन्स का प्रयोग करें : कद्दूवर्गीय सब्जियों मे नर व मादा फूल एक ही पौधे पर अलग अलग जगह पर आते हैं । शुरू में जो फूल आते है वो नर फूल होते है। घीया, तोरई, ककड़ी इत्यादि कुष्माण्ड कुल की सब्जियों में अधिक मादा फूल आये इसके लिए इथेपोन रसायन की 20–25 पीपीएम का स्प्रे करे।

पौध संरक्षण

कद्दूवर्गीय सब्जियों में लगने वाले कीटों में लाल भृग, फल मक्खी तथा, बरूथी मुख्य है। रोगों में तुलासिता, झुलसा, श्याम व्रण तथा छाछ्या मुख्य हैं ।

रोग एवं नियंत्रण

चूर्णल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू): कद्दू वर्गीय सब्जियों में यह एक प्रकार की फफूंदी से फैलने वाली बीमारी है, जिसका आक्रमण होने पर बेलों, पत्तियों, तथा तनों पर सफेद पर्ते चढ़ जाती है। इसकी रोकथाम के लिए कैरोथेन 0.1 प्रतिशत घोल एक ग्राम एक लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। बाविस्टीन 0.2 प्रतिशत से भी इस बीमारी की रोका जा सकता है। बीमारी की रोकथाम हेतु 10 से 12 दिनों के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।

मृदुल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू): कद्दूवर्गीय सब्जियों में इस बीमारी के प्रभाव से पत्तियों की निचली सतह पर भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं तथा इसके साथ–साथ पत्तियों पर भूरापन लिए हुए काले रंग की पर्ते चढ़ जाती हैं, यदि गर्मी के मौसम में बरसात हो जाए तो यह बीमारी बहुत आम हो जाती है। इस बीमारी की रोकथाम के लिए डायथेन एम– 45 या रिडोमिल 2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

फ्युजेरियम विल्ट : कद्दूवर्गीय सब्जियों में इसकी रोकथाम के लिए कैप्टान 2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर जड़ों में प्रयोग करें। फसल बदल–बदल कर बोएं, 3 साल का फसल चक्र अपनाएं ।

मोजैक बीमारी : यह विषाणु द्वारा होता है और इस रोग का फैलाव रस चूसने वाले कीटों द्वारा होता है। यह रोग बरसात वाली फसल में अधिक पाया जाता है। इस रोग की रोकथाम के

लिए रोगग्रस्त पौधों की पहचान कर शीघ्रातिशीघ्र उखाड़कर गड्ढे में दबा देना चाहिए। साफ खेत और खरपतवार नियंत्रण करके वायरस के संवाहक सफेद मक्खी को नियंत्रण में रखा जा सकता हैं। इमीडाक्लोप्रीड 0.3 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करके इस बीमारी को रोका जा सकता है।

कीट प्रकोप एवं नियंत्रण

लाल भृंग –लाल कद्दू भृंग (रैड पम्पकिन बीटल): कद्दू वर्गीय सब्जियों में इस कीट के शिशु और वयस्क दोनों ही फसल को हानि पहुंचाते हैं। वयस्क कीट पौधों के पत्ते में टेढ़े–मेढे छेद करते हैं, जबकि शिशु पौधों की जड़ों, भूमिगत तने तथा भूमि से सटे फलों और पत्तों को नुकसान पहुंचाते हैं। लाल रंग का यह कीट अंकुरित व नई पत्तियों को खाकर छलनी कर देता है ।दिन के समय यह कीट मिट्टी के ढेलों या दरारों में चला जाता है तथा रात्रि के समय पत्तियों को खाकर नुकसान पहुंचाता है। नियंत्रण के लिए मिथायल पैराथियॉन 2 प्रतिशत चूर्ण का 20 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करें। या एसीफेट नामक दवा आधा मिली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव या कार्बोफ्यूरान डस्ट 5 प्रतिशत का भुरकाव सुबह के समय करें।

फल मक्खी (फ्रुट फलाई): कद्दू वर्गीय सब्जियों में इस कीट की मक्खी फलों में अंडे देती है और शिशु अंडे से निकलने के तुरंत बाद फल के गूदे को भीतर ही भीतर खाकर सुरंगें बना देते हैं।

नियंत्रण

1. खेत की निड़ाई करके प्युपा को नष्ट कर दें।
2. कद्दू वर्गीय सब्जियों के ग्रसित फलों को भी एकत्रित करके नष्ट कर दें।
3. मक्खियों को आकर्षित कर मारने के लिए मीठे जहर, जो मेलाथियान 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी एवं 1 प्रतिशत चीनी या गुड़ (25 ग्राम प्रति लीटर पानी से बनाया जा सकता है) को 50 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। फल मक्खी रात को मक्का के पौधों के पत्तों की निचली सतह पर विश्राम करती है। इसलिए कद्दू वर्गीय फसलों के खेत के पास मक्का लगाने और उस पर छिड़काव करने से इस कीट को नियंत्रित करने में मदद मिलती है।

4. कद्दू वर्गीय सब्जियों में फल मक्खी के नरों को आकर्षित करने के लिए 'मिथाइल युजीनोल" पाश का प्रयोग भी किया जा सकता है।

सफेद मक्खी (व्हाइट फलाई): इस कीट के शिशुओं तथा वयस्कों के रस चूसने से पत्ते पीले पड़ जाते हैं। इनके मधुबिन्दु पर काली फफूंद आने से पौधों की भोजन बनाने की क्षमता कम हो जाती है।

नियंत्रण

1. इल्लियों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
2. नीम बीज अर्क 5 प्रतिशत या बी टी 1 ग्राम प्रति लीटर या कार्बारिल 50 डब्ल्यू पी, 2 मिलीलीटर प्रति लीटर या स्पिनोसेड 45 एस सी 1 मिलीलीटर प्रति 4 लीटर पानी में छिड़काव करें।
3. रोकथाम के लिए एमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस एल 1 मिलीलीटर प्रति 3 लीटर या डाइमेथोएट 30 ई सी 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

चेपा (एफिड): चेपा लगभग सभी कद्दू वर्गीय फसलों पर आक्रमण करते हैं। ये पौधों के कोमल भागों से रस चूसकर फसल को हानि पहुंचाते हैं।

नियंत्रण– इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 1 मिलीलीटर प्रति 3 लीटर या डाइमेथोएट 30 ई सी, 2 मिलीलीटर लीटर प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें।

पत्ती सुरंग कीट (लीफ माइनरं) : इस कीट के शिशु पत्ती के हरे पदार्थ को खाकर इनमें टेढ़ी–मेढ़ी सफेद सुरंगे बना देते है। इससे पौधों का प्रकाश संश्लेषण कम हो जाता है। अधिक प्रकोप से पत्तियां सूख जाती है।

रासयनिक नियंत्रण: इमिडाक्लोप्रिड 17.8 प्रतिशत एस.एल. 100 मिलिलीटर दवा प्रति हैक्टयर 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

पैदावार : फसल अनुसार उपज इस प्रकार है, जैसे– खीरा 100 से 120 क्विटल, लौकी 250 से 420 क्विटल, करेला 75 से 120 क्विटल, कद्दू 250 से 500 क्विटल, तोर 100 से 130 क्विटल, चप्पन कद्दू 50 से 60, खरबूजा 150 से 200 क्विटल और तरबूज 300 से 350 क्विटल प्रति हेक्टेयर होती है।

आधुनिक तकनीक से सब्जी पौध उत्पादन

बबलू गोस्वामी, मूमल भारद्वाज एवं हर्षवर्धन भारद्वाज
कृषि महाविद्यालय उम्मेदगंज कोटा एवं राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर

टमाटर, बैंगन, शिमला मिर्च, मिर्च, फूलगोभी, बंदगोभी, ब्रोकली, गांठगोभी, चाइनीज बंदगोभी, प्याज आदि पौध से उगाई जाने वाली प्रमुख सब्जियां हैं। अच्छी फसल उगाने के लिए पौध का स्वस्थ होना आवश्यक है। ऐसे में सब्जियों के पौध उत्पादन के लिए विभिन्न प्रकार की नई और उन्नत तकनीकों का विकास किया गया है। इन तकनीकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि किसान संरक्षित वातावरण में सब्जियों की स्वस्थ पौध तैयार कर सकते हैं। इनमें खरपतवार निकालने तथा अन्य कृषि कार्यों को संपन्न करने में सुविधा रहती है। आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग कर किसान अधिक लाभ कमा सकते हैं।

हरितगृह (ग्रीनहाउस)

तैयार पौध

सब्जियों की खेती में पौधशाला में पौध तैयार करना एक कला है। इसे सुचारू रूप से तैयार करने के लिए तकनीकी जानकारी का होना आवश्यक है। एक सफल किसान का प्रयास रहता है कि कम से कम लागत में अधिक से अधिक उत्पाद प्राप्त कर सके। सामान्य मौसम की दशाओं में सब्जियों का खुले वातावरण में साधारण देखभाल के साथ पौध उत्पादन किया जाना संभव है। प्रतिकूल मौसम में खुले वातावरण में सब्जियों की पौधशाला उगाने पर पौधा के नष्ट होने की आशंका रहती है। इसके लिए सब्जी उत्पादन में आधुनिक तकनीक के रूप में प्रयोग में ली गई विधियों को उच्च तकनीक या हाईटेक कहते हैं। ये तकनीकें आधुनिक मौसम और वातावरण पर कम निर्भरता वाली एवं अधिक लाभ देने वाली हैं। सब्जियों की पौध को साधारण और असाधारण मौसम की दशाओं में सफलतापूर्वक उगाने के लिए अब उन्नत वैज्ञानिक तकनीकें उपलब्ध हैं, जिन्हें अपनाकर सब्जियों की व्यावसायिक खेती करके किसान अधिक उपज प्राप्त कर सकते हैं।

हरितगृह (ग्रीनहाउस)

इस विधि द्वारा हरितगृह (ग्रीनहाउस) की पौधशाला में प्रो–ट्रे में पौध तैयार की जाती है। ग्रीनहाउस में विभिन्न प्रकार के उत्पादों कपड़ा, जालीनुमा अलग–अलग रंग का जाल, कांच आदि का उपयोग लोहे के फ्रेमों को ढकने के लिए किया जाता है। हरितगृह में 40 मेश का कीट अवरोधी नायलॉन नेट लगाकर छत को प्लास्टिक से ढका जाता है। इस नायलॉन नेट के कारण रसचूसक कीट जैसे–सफेद मक्खी, एफिड, माहू, जैसिड, थ्रिप्स आदि हरितगृह में प्रवेश नहीं कर सकते हैं, जिसके कारण विषाणु रोगों से भी सुरक्षा होती है। ग्रीनहाउस में दो दरवाजे लगाने चाहिए तथा दोनों दरवाजों के बीच कुछ स्थान खाली होना चाहिए। पहला दरवाजा खोलने के बाद अन्दर घुसकर दरवाजा बंद करने के बाद ही दूसरा दरवाजा खोलना चाहिए, ताकि दरवाजों के द्वारा भी कीटों का प्रवेश पूर्ण रूप से रुक सके। हरितगृह में आवश्यकतानुसार 50–75 प्रतिशत छाया करने वाले शेडनेट का उपयोग किया जाता है। इसे गर्मियों में दिन के समय फैलाकर बाहर से आने वाली अत्यधिक धूप को रोककर अन्दर 50–75 प्रतिशत तक छाया की जा सकती है। सर्दी के मौसम में इसे दिन में खुला रखा जा सकता है, 4–5 बजे के बाद में इसे बंद कर देना चाहिए, ताकि दिन के समय हरितगृह के अंदर अर्जित गर्मी को रात के समय उपयोग करके तापमान को संतुलित किया जा सके। छाया करने वाले नेट को हाथ से या मशीनों द्वारा बंद किया जाता है। लगभग 500 वर्ग मीटर के क्षेत्रफल में हरितगृह में लगभग 2–2.5 लाख सब्जियों की पौध तैयार कर अपनी आय को दोगुना कर सकते हैं।

पौध तैयार करने के लिए विभिन्न प्रकार के माध्यम

माध्यम

प्रो–ट्रे में कोकोपीट परलाइट व वर्मीकुलाइट 3:1:1 अनुपात का मिश्रण आयतन के आधार पर तैयार करके भरा जाता है। प्लास्टिक की खानेदार ट्रे के प्रत्येक खाने में एक ही बीज बोया जाता है। इसके बाद बीज के ऊपर माध्यम मिश्रण को पतली परत के रूप में डालते हैं। सर्दी में बीज बोने के बाद ट्रे को अंकुरण कक्ष में रखा जाता है, ताकि बीजों का अंकुरण जल्दी व अधिक हो सके। अंकुरण के बाद सभी प्रो–ट्रे हरितगृह में बने फर्श, जमीन से उठी हुई क्यारियों या लोहे के बने प्लेटफार्म आदि पर या ईटों से बने फर्श पर रखते हैं।

कोकोपीट

उपरोक्त माध्यमों में से कोकोपीट को नारियल के फलों की जटा में उपस्थित रेशों को गलाकर बनाया जाता है। यह जड़ों की बढ़वार के लिए माध्यम का कार्य करता है।

वर्मीकुलाइट

वर्मीकुलाइट, माइका चट्टानों के अत्यधिक तापमान पर गर्मी के फलस्वरूप फैलाव से बनता है। यह एक प्रकार का खनिज होता है। इसमें मैग्नीशियम व पोटेशियम लवण आंशिक मात्रा में होते हैं, जो माध्यम में उचित नमी बनाये रखने का काम करता है।

परलाइट

परलाइट, ज्वालामुखी फटने से विकसित चट्टानों से निकाले गये पदार्थ से विकसित हुआ है। यह माध्यम भी उचित जल निकास व माध्यमों के मिश्रण के बीच उचित हवा उपलब्ध करवाने में सहायता करता है। यह सफेद रंग का बहुत हल्का माध्यम है, जिसका एक भाग आयतन के अनुसार मिश्रण में मिलाया जाता है। इसके अलावा प्रो–ट्रे में पौध तैयार करने के लिए केंचुए की खाद, कोकोपीट आदि का भी उपयोग हो रहा है। माध्यम के मिश्रण को प्रो–ट्रे में भरने से पूर्व अच्छी तरह से रोग एवं कीटाणु मुक्त करना चाहिए, ताकि पौध गलन रोगों से बचाव हो सके।

सर्दी के मौसम में पौध की प्रारंभिक अवस्था में 50–70 पीपीएम (50–70 मिग्रा. प्रति लीटर पानी) नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश को मिलाकर बने घोल को दिया जाता है। इसके बाद में यह मात्रा 150 पी.पी.एम. प्रति सप्ताह तीन से चार बार घोल बनाकर दें। उर्वरक व पानी बूंद–बूंद सिंचाई प्रणाली द्वारा दिया जाता है, जिससे उर्वरक व पानी की मात्रा समान रूप से पौध को मिले। इससे पौध की बढ़वार अच्छी व गुणवत्तापूर्ण होती है। इस विधि द्वारा पौध तैयार होने में लगभग 25–30 दिन लगते हैं। पौध को माध्यम सहित निकालकर खेत में रोपाई सायंकाल के समय करे, झारे की सहायता से हल्की सिंचाई करें। पौध को एक स्थान से दूसरे स्थान तक माध्यम सहित ले जाने के लिए आसानी से पैकिंग करके ले जाया जा सकता है। इस विधि को अपनाकर कद्दूवर्गीय सब्जियों की पौध15 से 18 दिनों में तैयार कर सकते हैं। कीट व्याधियों की समस्या होने पर रसचूषक कीट के प्रकोप से बचाव के लिए मैलाथियॉन 50 ई.सी. नामक कीटनाशी दवा 1.25 मिली. प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करें। जड़ एवं तनागलन आदि रोगों से बचाव के लिए प्रो–ट्रे के माध्यम को काबेंडाजिम नामक फफूंदनाशी दवा 1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल से उपचारित या छिड़काव अवश्य कर लें।

प्रो–ट्रे पौध उत्पादन प्रौद्योगिकी का आर्थिक विश्लेषण

500 वर्ग मीटर क्षेत्र वाले साधारण हरितगृह में एक बार में 2.0 लाख तक विभिन्न प्रकार की सब्जियों की पौध तैयार करना संभव है। इससे वर्षभर में 6 से 8 किश्तों में पौध तैयार करना भी संभव है। इस प्रकार एक वर्ष में हरितगृह में 15 से 20 लाख पौध तैयार की जा सकती है। पौध तैयार करने में 30 से 35 पैसे की सम्पूर्ण लागत (जिसमें बीज की कीमत सम्मिलित नहीं आती है। यदि उस पौध को उत्पादक 50 पैसे में बेचता है, तो उसे वर्षभर में 3.0 से 4.0 लाख रुपये का लाभ अर्जित हो सकता है। पौध उत्पादन की यह विधि एक लघु उद्योग के रूप में अपनाने से बेरोजगार युवकों को स्वरोजगार का अवसर मिलेगा। इसके साथ ही साथ दो से तीन लोगों को वर्षभर रोजगार देने में सक्षम हो सकेंगे। रोजगार के इस तरीके से पौध उत्पादन कर शिक्षित नवयुवक सब्जी उत्पादन व बीज

प्रो–ट्रे में पौध तैयार करना

कम लागत वाले शेड नेट हाउस में सब्जियों की पौध तैयार करना

सब्जियों की स्वस्थ, विषाणु रोग रहित व बेमौसमी पौध को विभिन्न प्रकार की अलग–अलग लागत वाली संरक्षित संरचनाओं में भी सफलतापूर्वक तैयार किया जा सकता है। इसके लिए कृषक बरसात के मौसम में जी. आई. पाइप, जिनका व्यास 2 इंच का हो, को अर्द्ध गोलाकार में मोडकर उन्हें जमीन में सीमेन्ट, कंक्रीट की सहायता से 40 से 50 मेश आकार से ढक लेते हैं। यह धूप रोधी होनी चाहिए। इस प्रकार 50 वर्ग मीटर के शेड नेटहाउस बनाने में 6 जी.आई. पाईप व 100 वर्ग मीटर नेट लगेगा, जिसकी कुल कीमत लगभग 5000 से 5500 रुपये होगी। इस प्रकार सब्जी उत्पादक विषाणु रोगरहित एवं स्वस्थ पौध तैयार कर सकते हैं। शेड नेटहाउस के अंदर क्यारियां बनाकर उनमें भी पौध तैयार की जा सकती है। इसमें मृदाजनित रोगों की भी रोकथाम की जा सकती है। खेत में विषाणु रोग से बचाव संभव नहीं है। पौधे को प्लास्टिक प्रो–ट्रे में मृदारहित माध्यम में तैयार किया जा सकता है। मृदारहित माध्यम में पौध

तैयार करने के लिए प्लास्टिक प्रो–ट्रे का उपयोग किया जाता है। इसमें यहां तक कि कद्दूवर्गीय सब्जियों की पौध को भी तैयार कर सकते हैं। जिसे परम्परागत विधि द्वारा तैयार करना संभव नहीं है।

शेड नेट हाउस में सब्जियों की पौध तैयार करना

परम्परागत विधि द्वारा अन्य सब्जियों की स्वस्थ पौध तैयार करने के लिए पौधशाला की मृदा को फार्मेल्डिहाइड के घोल 0.1 प्रतिशत द्वारा कीटाणु रहित किया जा सकता है। सर्दी के दिनों में पौध कम समय में वातावरण की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कम लागत वाले पॉलीहाउस में पौध तैयार की जाती है। इसमें नेटहाउस की तरह ही जी.आई. पाइपों का ढांचा तैयार करके ऊपर से ढकने के लिए 180 से 200 माइक्रॉन की पॉलीथीन, जो सूर्य के प्रकाश व तापमान से प्रभावित नहीं हो, का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार फ्रेम को ऊपर से ढककर कम लागत का पॉलीहाउस तैयार किया जा सकता है। पॉलीहाउस में सर्दी के दिनों में पौध को दिसम्बर से जनवरी में ही तैयार कर लिया जाता है। इससे यह परम्परागत विधि की अपेक्षा पहले तैयार हो जाती है तथा उन्हें फरवरी में खेत में रोपित करके, सब्जी उत्पादक अपने उत्पाद को 30 से 40 दिन अगेती पैदा कर बाजार में बेचकर अधिक लाभ कमा सकते हैं। ठीक इसी प्रकार यदि सब्जियों की पौध को मई या जून में तैयार करना है, खासकर फूलगोभी की, तो इस कीट अवरोधी नेट के ऊपर 50–75 प्रतिशत छाया करने वाले नेट ढककर सफलतापूर्वक तैयार किया जा सकता है। इस समय हमारा उद्देश्य तापमान तथा प्रकाश की तीव्रता को कम करना होता है। इसके लिए काले रंग का छाया करने वाला नेट ज्यादा उपयोगी रहता है। छाया करने वाले नेट को मई, जून, जुलाई तथा अगस्त में ही उपयोग में लिया जा सकता है, बाद में इसे हटा लिया जाता है।

लाभ

- पौध जल्दी समय रहते 20 से 25 दिनों में तैयार की जा सकती है। सब्जी की पौध वर्षभर में तैयार की जा सकती है।
- खासकर मौसम से पहले फसल उगाने के लिए ताकि बेमौसमी उत्पादन द्वारा अधिक लाभ कमाया जा सके।
- कद्दूवर्गीय सब्जियों की पौध को भी इस विधि द्वारा सरलतापूर्वक तैयार किया जाता है, जो परंपरागत विधि द्वारा तैयार करना संभव नहीं होता है।
- बीज की मात्रा को भी काफी कम 40–60 प्रतिशत किया जा सकता है। इस विधि द्वारा प्रत्येक खाने में 1–2 बीज बोया जाता है।
- पौध को मृदाजनित रोगों, कीटाणुओं एवं विषाणु रोगों से बचाया जा सकता है। खेत में विषाणु रोगों का फैलाव का एक कारण संक्रमित पौध भी होता है।
- जब पौध बाहर पौधशाला में तैयार की जाती है, तो पौध रोपण के समय जड़ों आदि के टूटने से पौधों की रोपण उपरांत मरण क्षमता में लगभग 15 से 20 प्रतिशत बढ़ोतरी हो जाती है। प्लग ट्रे विधि द्वारा पौध तैयार करने में पौध के मरने की आशंका बहुत कम रहती है। इससे पौधे को रोपण उपरांत घात नहीं लगता है।
- पौधे में जड़तंत्र का विकास अच्छा होता है, जिसके कारण पौधे ओजस्वी होते हैं। पौध मुख्य खेत में रोपाई के बाद बहुत जल्दी स्थापित होती है।
- पौध की गुणवत्ता अच्छी होने से उत्पादन अधिक प्राप्त होता है।
- पौध को उचित पैकिंग के बाद दूरस्थ स्थानों तक भेजा जा सकता है, जहां इनको उगाया जाना मुश्किल एवं उपलब्धता बहुत कम हो।
- सब्जियों में संकर किस्मों के बीज बहुत महंगे होने के कारण इस विधि द्वारा वातावरण की प्रतिकूल दशाओं में भी उचित प्रबंधन आसान होता है।
- उर्वरक व पानी का समुचित उपयोग होता है।
- इस विधि से तैयार पौध की बढ़वार एक समान होने के कारण खेत में रोपाई के बाद फसल की बढ़वार भी एक समान होती है।
- सब्जियों की संरक्षित खेती के लिए पौध तैयार करने की यह आवश्यक एवं आधुनिक विधि है।

फूलो की खेती में पादप वृद्धि नियामक की भूमिका

हेमराज छीपा, अनिल कुमार गुप्ता एवं हनुमान सिंह
उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़ एवं कृषि महाविद्यालय, हिण्डोली, बून्दी

पादप वृद्धि नियामक का उपयोग नवीन कृषि एवं बागवानी पद्धतियों में बहुतायत से होने लगा है। जिसमे भी विकसित देशो में फूलो की खेती में तो इसका उपयोग एक साधारण प्रक्रिया सा होता जा रहा है । पादप हॉर्मोन प्राकृतिक कार्बनिक पदार्थ है जो की पादप के एक भाग में बन कर दूसरे भाग में स्थानांतरित होते है और वहां बहुत कम मात्रा में ही पादप वृद्धि को प्रभावित करते है। जबकि पादप वृद्धि नियामक वो कार्बनिक पदार्थ है जो कम मात्रा में ही पौधे की वृद्धि को प्रभावित करते है। पादप वृद्धि नियामक मुख्यता दो प्रकर के हैं जिनमे वृद्धि समर्थक और वृद्धि अवरोधक शामिल है। वृद्धि समर्थक वो पीजीआर है जो की पादप वृद्धि को बढ़ाते हैं या प्रगति की और अग्रसर करते हैं जबकी वृद्धि अवरोधक वो पीजीआर है जो पादप वृद्धि को नकारात्मक दिशा में मोड़ते है या वृद्धि को रोकते है। फूलो की खेती में पादप वृद्धि नियामक का उपयोग बहुतायत से पादप वृद्धि को नियत्रित करने में किया जा रहा है।
फूलो की खेती में पीजीआर के विभिंन उपयोग निम्न प्रकर से है।

1. पादप प्रबंधन
2. पादप वृद्धि संवर्धन
3. शीर्ष प्रभुत्व और पार्श्व शाखाओ की वृद्धि
4. पुष्पन का नियमन
5. फुलो का उत्पादन बढ़ाना
6. सुषुप्ताता को तोडना
7. फूलो का कटाई उपरान्त फुलदान जीवन बढ़ाना
8. खरपतवार नियंत्रण
9. पादप की उचाई के नियंत्रण में

पादप वृद्धि नियामक बहुत ही सूक्ष्म मात्रा में उपरोक्त प्रभाव दर्शाता है। फिर भी, पादप वृद्धि नियामक का प्रभाव, पादप की किस्म, उम्र, वातावरणीय प्रभाव, पोषक तत्वों की उपलब्धता पर भी निर्भर करते है ।

1. पादप प्रवर्धन

फूलो की खेती में विभिन्न पादप वृद्धि नियामक का उपयोग बहुतायत से किया जाता है जिनमे से कुछ उदहारण निम्न प्रकार से है।

- कलम विधि से प्रवर्धन में जड़ो के विकास के लिए ऑक्सिन, मुख्यतया इण्डोल ब्यूटिरिक एसिड (IBA), नाफ्थलिक एसिटिक एसिड (NAA) और इण्डोल एसिटिक एसिड (IAA), उपयोग में लिये जाते है। जिसको उपयोग में लेने के विभिन्न तरीके है जैसे, 24 घंटे के लिए 25–100 mg/l की कम सांद्रता में भिगो कर रखना, अधिक सांद्रता 1000–10000 मि.ग्रा./लीटर पर 5 सेकंड से 2 मिनट तक डुबो के रखना अथवा कलम के निचले सिरे को ऑक्सिन के 500–12000 मि.ग्रा./लीटर सांद्रता से मिश्रित पाउडर से लैप द्वारा रोपण करना ।
- बीज द्वारा प्रवर्धन करने पर जिब्बरेलिक एसिड द्वारा बीज की अंकुरण क्षमता बड़ाई जा सकती है ।

2. पादप वृद्धि संवर्धन

कई फूलो की खेती में उच्च गुणवत्ता में तने की लम्बाई एक मुख्य मापदंड होता है जिसे जिब्बरेलिक एसिड (100–400 मि.ग्रा./लीटर) के द्वारा बढ़ाई जा सकती है जैसे गुलाब, गुलदाउदी, कारनेशन दहेलिआ आदि। ❋❋❋

3. शीर्ष प्रभावित एवं पार्शव शाखाओ की वृद्धि

फूलो की खेती में पार्शव शाखाओ में वृद्धि और शीर्ष प्रभुत्व को कम करने के लिए बेंजील एडेनिन, एथेफोने, TIBA और मेलिक हाइड्रेजायद (MH) जैसे पादप वृद्धि नियामक का उपयोग बहुत फायदेमंद है ।

4. पुष्पन का नियंत्रण

पादप वृद्धि नियामक के उचित प्रयोग से पादपों में पुष्पन को शीघ्र अथवा देरी से करवाना और एक साथ पुष्पन करवाना जैसे प्रभाव देखे जा सकते है ।इस कार्य के लिए जिब्बरेलिक एसिड और ऑक्सिन जैसे पादप वृद्धि नियामक अलग अलग फसलों में अलग अलग सांद्रता पर उपयोग लिए जाते है ।

5. फूलो का उत्पादन बढ़ाना

काइनेटिन या जिब्बरेलिक एसिड का एक या दो बार छिड़काव करने से ग्लेडियोलस, रजनीगंधा आदि फसलों में कार्म और बल्ब का उत्पादन बढ़ाता है।

6. सुषुप्ता का नियंत्रण

कुछ फूल वाले पादपों में इथ्रेल अथवा एथेफोन जैसे पादप वृद्धि नियामकों के उपयोग से बीज, कार्म और कार्मेल की सुषुप्ता को तोडा जा सकता है जैसे ग्लेडियोलस आदि। कुछ पादपों में परिवहन के समय अंकुरण से बचाने के लिए और कुछ समय तक भण्डारण बढ़ाने के लिए MH, SADH जैसे पादप वृद्धि नियामक काम में लिए जाते है ।

7. फूलो का कटाई उपरांत फूलदान जीवन बढ़ाना

एथिलीन नामक पादप वृद्धि नियामक कटाई उपरांत फूलो का जीवन शीघ्र नष्ट कर देता है। इसलिए ईथीलीन विरोधक रसायनो के उपयोग से जैसे कीनेटिन, AVG को फूलदान के पानी में मिलाकर देने से फूलदान में फूलो का संरक्षण लम्बे समय तक किया जा सकता है ।

8. खरपतवार नियंत्रण

2,4 – डाई क्लोरो फेनोक्सी एसिटिक एसिड (2,4 डी) एवं 2,4,5 –ट्राई क्लोरो फेनोक्सी एसिटिक एसिड खरपतवार नाशी के रूप में प्रसिद्ध है जिसका उपयोग अनेक फसलों में खरपतवार नियंत्रण में किया जाता है ।

9. पादप की उचाई के नियंत्रण में

पादप वृद्धि नियामक जैसे MH, सीसीसी और बी–नाइन आदि का उपयोग सजावटी पौधों में, जो की छतों पर या गमलो में लगाए जाते है, की उचाई को नियंत्रित करने में किया जाता है। वर्तमान परिस्थितियों में जहां पादप वृद्धि नियामकों का उपयोग कृषि एवं बागवानी में बढ़ता जा रहा है उसी तरह से फूलो की खेती में भी इसके बढ़ते उपयोग से उच्च गुणवत्ता के पुष्पों का अधिक से अधिक उत्पादन एवं पादप वृद्धि और विकास का नियंत्रण किया जा सकता है। साथ ही पुष्पों की कटाई उपरांत जीवन क्षमता बड़ाई जा सकती है जिससे परिवहन में आसानी और किसानों को अच्छे दाम प्राप्त हो सकें।

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन तकनीक

राजेंद्र कुमार यादव, वी. के. यादव, बलदेव राम एवं एस. एन. मीना
कृषि अनुसंधान केंद्र उम्मेदगंज, कोटा

मृदा पृथ्वी के उपरी सतह पर हल्की परत के रूप में पायी जाती है। जो बीजों के अंकुरण एवं नवांकुर से लेकर वृद्धा अवस्था तक पौधों को पोषण एवं सम्बल प्रदान करती है। यही कारण है कि अर्थववेद का श्लोक "माता भूमि पुत्रहं पृथ्वीयाः" इसके माता के रूप में स्वीकृति को दर्शता है। परन्तु आज सबको पोषण एवं सम्बल प्रदान करने वाली हमारी मृदा दिन–प्रतिदिन स्वयं कुपोषण का शिकार बनती जा रही है। साथ ही यह तरह–तरह के अत्याचार जैसे पोषक तत्वों का दोहन एवं असंतुलन, विशैले पदार्थो का निस्तारण,कार्बनिक पदार्थ का लगातार हो रहे कमी, अधिक जुताई तथा भारी कृषि यंत्रों के प्रयोंग से मृदा संरचना की गुणवत्ता में गिरावट,भू–क्षरण,अम्लीयता, क्षारियता, जल–मग्नता एवं उपरी सतह की कठोरता में वृद्धि, लाभदायक सूक्ष्मजीवों की संख्यां में कमी इत्यादि का शिकार होकर बीमार हो रही है। वैज्ञानिकों का मत है कि मृदा स्वास्थ्य की रक्षा, बीमार मृदा के इलाज से कही ज्यादा सस्ता एवं सरल है। अतः हम सभी का यह नैतिक कर्तब्य बनता है कि माता स्वरूपा मृदा को बीमार एवं नष्ट होने से बचावें।

"मृदा स्वास्थ्य, मृदा में पाये जाने वाले वनस्पतियों एवं जन्तुओं तथा उनके चारों ओर फैले पारिस्थितिक तंत्र के बीच एक गतिशील सामंजस्य की आवश्यकता को बनाना है जिसमें सभी पूर्ववर्ती उपापचयी क्रियाओं की गतिशीलता अगामी क्रियाओं से बिना किसी रूकावट, अवरोध या दबाव में सत्त अपनी उच्च अवधी तक बनी रहे" (गोस्वामी एवं रतन,1992)। जोफे एवं सैफले (1997) के अनुसार –जैविक उत्पादकता वायु एवं जल के गुणवत्ता का सम्पोषण करते हुए पौधों पशुओं एवं भूमि उपयोग सीमाओं के बनाये रखने के लिए, एक पारिस्थितिक तंत्र एवं भूमि उपयोग सीमाओं के अर्न्तगत एक सजीव के रूप में मृदा की कार्य करने के अबोध क्षमता को ही "मृदा स्वास्थ्य" कहा जाता है। उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि मृदा, उत्पादन का एक साधन मात्र ही नही अपितु एक सजीव एवं क्रियाशील प्राणी की तरह व्यवहार करती है। अतः पेड़ पौधों, पशु–पक्षियों एवं मानव की तरह ही मृदा का भी अपना स्वास्थ्य है। मृदा स्वास्थ्य को एक विशेष समय में मृदा की वर्तमान स्थिति के रूप में स्वीकार किया जाता है जो मृदा की परिवर्तनशील (गुणों के समतुल्य है और बहुत कम समय में ही परिवर्तित हो सकता है।

मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक घटक व पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता और फसल उत्पादकता में सुधार के लिए अवशेषों के प्रबंधन, उपयुक्त फसलचक्र का चयन, बेहतर जुताई पद्धति एवं पोषक तत्वों को सन्तुतिल मात्रा में इस्तेमाल करने के साथ ही यह भी देखना होगा की कहीं गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के कारण उर्वरकों का दक्षता में कमी तो नही हो रही है। उर्वरकों का सही मात्रा में सही समय एवं सही विधि से प्रयोग किया जाना चाहिए ताकी जल निक्षालन द्वारा उर्वरको में विशेष कर नत्रजन से जल दूषित न हो और उर्वरक की प्रति इकाई मात्रा से उत्पादन में अधिकतम वृद्धि सुनिश्चित हो सके। फसल तथा उसमें प्रयुक्त जैविक खादों तथा पोटाश, फास्फोरस एवं गौण व सूक्ष्म पोषक तत्वो के अवशिष्ट प्रभाव को ध्यान में रखते हुए आगामी फसल के लिए उर्वरको की मात्रा का निर्धारण किया जाना चाहिए इसलिए मृदा परिक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है। रासायनिक उर्वरकों का यथासंम्भव इस्तेमाल से कृषि की लागत को कम करके अधिक उत्पादन लेने व मृदा स्वास्थ्य को बनाये रखने की कुछ प्रमुख तकनीक निम्न प्रकार से है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

पोषक तत्वों के सभी स्रोत (रासायनिक उर्वरक, जैविक एवं जीवाणु खाद) का संतुलित, समुचित एवं समयानुकूल प्रयोग कर फसलों से उच्च उत्पादकता निरंतर पाने की प्रबंधन तकनीक जिससे मृदा एवं पर्यावरण को हानि न पहुँचे ''समेकित पोषक तत्व प्रबंधन' कहलाती है। मृदा उर्वरता में वृद्धि अथवा बनाए रखने के लिये पोषक तत्वों के सभी उपलब्ध स्त्रोतों से मृदा में पोषक तत्वों का इस प्रकार सामंजस्य रखा जाता है, जिससे मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणवत्ता में सुधार के साथ साथ लगातार उच्च आर्थिक उत्पादन लिया जा सकता है। कार्बनिक खादें वर्तमान फसल को तो लाभ पहुँचाती ही है साथ ही आगामी फसल को भी अवशोषित प्रभाव द्वारा लाभ पहुँचाती है।

तालिका:1 मृदा स्वास्थ्य को नियंत्रित करने वाले भौतिक, रसायनिक एवं जैविक संकेतक

क्र.सं.	भौतिक संकेतन	रासायनिक संकेतन	जैविक संकेतन
1.	स्थूल धनत्व	पी0एच0,विधुत चालकता	पौधों के जड़ो का स्वास्थ्य मूल्यांकन
2.	रन्ध्रावकाश	मुख्य पोषक तत्व–नाइट्रोजन,फास्फोरस ,पोटाश, कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं सल्फर	लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या का मूल्यांकन
3.	सूखे ढेले का आकार (0.25 मिली मीटर से कम)	सूक्ष्म पोषक तत्व–आयरन,मैगनिज कॉपर,जिंक,बोरॉन, मॉलिब्डेनम,क्लोरीन, निकल	सूक्ष्मजीवों के श्वसन दर का मूल्यांकन

4.	गीले ढेले का आकार (0.25 से लेकर 8 मिली मीटर से कम)	भारी धातु तत्व–कैडमियम, मरकरी, लेड, अर्सेनिक	जैव पदार्थो के अपघटन की दर का मूल्यांकन
5.	मृदा सतह की कठोरता (पेनेक्ट्रोमीटर द्वारा)	धनायन विनिमय क्षमता	जैव पदार्थो की मात्रा
6.	मृदा अधोसतह की कठोरता (पेनेक्ट्रोमीटर द्वारा)	बफर क्षमता	कार्बनिक पदार्थो का अकार्बनिक पदार्थो में रूपान्तर का दर

जैविक खाद

जैविक खाद का उपयोग किसान प्राचीन काल से करते आ रहे हैं परन्तु अधिक पैदावार देने वाली फसल की किस्म के लिए अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होने के कारण जैविक खाद पर निर्भर न रहकर रासायनिक उर्वरकों को मुख्य रूप से प्रयोग करते है। रासायनिक उर्वरकों के लगातार अधिक मात्रा में प्रयोग करने से मृदा व पर्यावरण के लिए हानिकारक होता है। जैविक खाद न केवल पौषक तत्वों की पूर्ति करती है अपितु मृदा की भौतिक, जैविक तथा रासायनिक गुणवत्ता को भी बढ़ाती है। भारत में गोबर की खाद, विभिन्न प्रकार की कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, बायोगैस स्लरी, खालियां, मुर्गी, भेड़ अथवा बकरी से प्राप्त खाद मुख्य रूप से प्रयोग में आने वाले जैविक खाद के स्त्रोत है। खेत में हरी खाद के लिए मुख्य रूप से दलहनी फसलें उगाकर मृदा की उर्वरता में सुधार किया जा सकता है। हरी खाद की फसलें में ढ़ैचा, सन, लोबिया तथा दूसरी दलहनी फसलें मुख्य हैं कुछ महत्वपूर्ण हरी खाद फसलों से प्राप्त हरे पदार्थ की मात्रा एवं नत्रजन की उपलब्धता को निम्न तालिका 2 में प्रस्तुत किया गया है।

साथ साथ भूमि पर किसी भी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं डालते है तथा इनका उपयोग भी सुविधाजनक होता है। इनका प्रयोग करने से वायुमण्डलीय नाईट्रोजन का स्थिरीकरण, मृदा में उपस्थित फॉस्फोरस व अन्य पोषक तत्वों को पौंधो के लिए उपलब्धता बढ़ाकर मृदा की उर्वरता एवं स्वास्थ्य को ठीक रखते है उदाहरण के लिए दलहनी फसलों में राइजोबियम का सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार फॉस्फोरस, पोटाश एवं तत्वों की उपलब्ता बढ़ाने के लिए जैविक उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। जैव उर्वरकों के प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों की मात्रा में कटौती करते हुये उचित उपज व लाभ ले सकते है इसके साथ–साथ मृदा स्वास्थ्य को भी उत्तम रखा जा सकता है।

रासायनिक उर्वरक

आधुनिक कृषि में खाद्यन्न उत्पादन के लिए रासायनिक उर्वरक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। रासायनिक उर्वरक, मृदा उर्वरता पर अनुकूल प्रभाव इस संदर्भ में लिया जा सकता है कि इनके प्रयोग से मरुस्थलीकरण कम हुआ, जैव विविधता बढ़ी, तथा पोषक तत्वों के दोहन में कमी हुई है। फसलों में रासायनिक उर्वकों का प्रयोग वैज्ञानिक तरीके से करना चाहिए। नत्रजन, फॉस्फोरस, पौटशियम के लिए क्रमशः युरिया, डीएपी और म्युरेट ऑफ पोटाश उर्वरक का प्रयोग किया जाता है। गंधक के प्रमुख स्त्रोत फॉस्फोरस, पोटाश, गंधक तत्व, जिप्सम एवं आयरन पाइराटस है जिंक व आयरन की कमी को दूर करने के लिए क्रमशः जिंक सल्फेट व आयरन सम्फेट का प्रयोग किया जाता है। फॉस्फोरस व पोटाशयुक्त उर्वरकों का खाद्यान्न फसलों में, एक बार की बजाए दो या तीन बार करना अधिक उपयोगी रहता है। अगर मृदा में नत्रजन की मात्रा मध्यम या अधिक हो तो बुवाई के समय यूरिया का प्रयोग न करके यूरिया उर्वरक की मात्रा कम की जा सकती है बल्की खड़ी फसल में प्रयोग करें जिससे अधिक उपज व पर्यावरण सुरक्षित रहेगा।

तालिकाः 2 दलहनी हरी खाद फसलों को नाइट्रोजन स्थिरीकरण (यौगिकी करण) में योगदान

फसल का नाम	उगाने की ऋतु	हरे पदार्थ की औसत उपज (टन/हैक्टेयर)	हरे पदार्थ में नाइट्रोजन (प्रतिशत)	मृदा में नाइट्रोजन का योगदान (किग्रा/हैक्टेयर)
ढैंचा	खरीफ, जायद	15	0.45	77
मूंग	खरीफ, जायद	5	0.53	40
लोबिया	खरीफ, जायद	12	0.50	56
ग्वार	खरीफ, जायद	14	0.35	62
बरसीम	रबी	10	0.43	60

जैव–उर्वरक

जैव उर्वरक प्रकृति में पाये जाने वाले ऐसे जीवाणुओं का समूह है जो वायुमण्डल में उपस्थित नत्रजन का स्थिरीकरण तथा मृदा में अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील बनाकर पौधों को नत्रजन एवं फास्फोरस उपलब्ध कराते है तथा फसलों की पैदावार में बढोतरी करते है। इसके अतिरिक्त जैव उर्वरकों में मौजूद जीवाणु कई प्रकार के स्राव जैसे एन्जाइम, विटामीन, हारमोन व कई प्रकार के वृद्धि नियंत्रक पदार्थ विसर्जित करते हैं जो फसलों की अंकुरण क्षमता, पौधों के विकास एवं कवक रोगों के प्रति सहनशीलता बढ़ाते है। जैव उर्वरक आर्थिक दृष्टि से रासायनिक उर्वरकों की तुलना में बहुत सस्ते एवं प्रभावी विकल्प होने के

फसल चक्र अपनाना

फसल चक्र किसानों द्वारा प्रयोग मे लाई जाने वाली ऐसी प्रक्रिया है जिससे मृदा मे उपस्थित पोषक तत्वों का पूर्णरूप से उपयोग किया जा सकता है। यदि एक ही फसल को बार–बार एक ही खेत से लिया जाता है तो उस खेत की मृदा में कुछ विशेष पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। ये वह पोषक तत्व है जिनकी आवश्यकता उस फसल को सर्वाधिक होती है। अतः पोषक तत्वों की कमी को रोकने हेतु उचित फसल चक्र अपनाना ही उपयुक्त है। सघन कृषि प्रणाली में जैविक खादों, संतुलित उर्वरकों व जैव उर्वरकों के प्रयोग के साथ–साथ सही फसल चक्र को अपनाना नितान्त आवश्यक है। खाद्यान्नों के चक्र के बीच में दलहन की फसल उगाने से खेत की उर्वरा शक्ति काफी अच्छी रहती है तथा सभी फसलों का उत्पादन स्तर काफी टिकाऊ होता है।

फसल अवशेषों को मृदा मे मिलाना

फसलों के अवशेष जैसे गेहूं का भूसा, धान की पुआल एवं छिलका, कपास/अरहर की छंटियाँ, गन्ने की पत्तियाँ, प्रैस मड, मोलैसिस (शीरा), पेड़ों की पत्तियाँ, खरपतवार के पौधे, बाजरा/ज्वार/मक्की की कड़बी आदि को भूमि में वापिस पंहुचाकर उपलब्ध पोषक तत्त्वों जैस नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश व सूक्ष्म तत्व तथा कार्बनिक पदार्थ आदि का पूर्ण दक्षता के साथ अधिक फसल उत्पादन ले सकते हैं। आमतौर पर किसान फसल अवशेषों को खेत में जला देता है जिससे इनमे उपलब्ध पोषक तत्व नष्ट होने के साथ–साथ पर्यावरण को भी प्रदूषित करते है।

प्रेसमड

भारत में वर्षभर में भारी मात्रा में प्रेसमड, शीरा एवं बैगस (खोई) का चीनी मिलो से उत्पादित होता है जिसमें की लोहा, जिंक, कैल्सियम तथा मैग्नीज उपस्थित होता है। प्रेसमड का सूक्ष्म जीव से विघटन करने के पश्चात खेत में प्रयोग करने से मृदा के रासायनिक, भौतिक व जैविक गुणों में सुधार होता है। प्रेसमड व फ्लाई एश को भूमि सुधारक के रूप में प्रयोग करके समस्याग्रस्त एवं सामान्य मृदाओं की उर्वरता में भी सुधार लाया जा सकता है।

क्षेत्र विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन

क्षेत्र विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन का उद्देश्य आवश्यकता के अनुसार उचित पोषक तत्व एवं फसल प्रबंधन से अधिक उपज का लाभ प्राप्त करना है। जिसमे एक फसल या किस्म विशेष के लिए क्षेत्र और मौसम–विशिष्ट आवश्यकता के अनुरुप स्थानिय रुप से अनुकूलित पोषक तत्व प्रबंधन किया जाता है। मृदा प्रबंधन में स्थानीय संसाधन का समुचित उपयोग करने के लिए निम्नलिखित आवश्यक बातों को अपनया जाता है।

- सभी सुलभ पोषक तत्वों के स्त्रोतों का कुशल उपयोग करना जिसमें जैव खादें, फसल अवशेष तथा अकार्बनिक उर्वरता एवं कीमत के अनुसार सम्मिलित हो।
- पत्ती रंग पट्टीका का उपयोग करते हुए पादप आवश्यकता आधारित नाइट्रोजन प्रबंधन रणनीति का अनुपालन।
- पोषक तत्व वंचित क्यारी के उपयोग द्वारा मृदा की नैसर्गिक पोषक तत्व आपूर्ति (विशेषतः फॉस्फोरस तथा पौटशियम) का निर्धारण।
- फसल के पोषक तत्वों (मुख्य तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों) की संतुलित आपुर्ति सुनिश्चित करना।
- मृदा पोषक तत्वों के भंडार का ह्रास रोकने हेतू दाना तथा भूसा के द्वारा निष्कासित पोषक तत्वों (विशेषतः फॉस्फोरस तथा पौटशियम) को प्रतिस्थापित करना।
- उर्वरक स्त्रोतों के न्यूनतम कीमत वाला संयोजन करना है।

मृदा परिक्षण के आधार पर पोषक तत्वों का प्रयोग

मृदा परिक्षण, मृदा की उर्वरक और उत्पादकता के बारे में एक सम्पूर्ण जानकारी प्रधान करती है। यह किसानों की खेती में अनावश्यक उर्वरकों के खर्चे को कम करने में सहायक होती है। मृदा की उत्पादन क्षमता उसकी उर्वरक शक्ति पर निर्भर करती है। पौधे अपने विकास एवं बढ़वार के लिए आवश्यक पोषक तत्व मृदा से प्राप्त करते है। पौधों को इन तत्वों की आवश्यकता फसल की किस्म तथा उससे प्राप्त की जाने वाली उपज के स्तर पर निर्भर करती है। उपज प्राप्ती का लक्ष्य जितना बढ़ा होगा इन तत्वों की उतनी ही अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। मृदा में इन तत्वों की मात्रा सही अनुपात में होने पर ही अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। मृदा का उर्वरा शक्ति के प्रबंधन के लिए उपलब्ध पोषक तत्वों के प्रकार एवं मात्रा की जानकारी होना आवश्यक है। फसल विशेष के लिए उपलब्ध पोषक तत्वों की आवश्यक मात्रा का प्रबंधन इस तरह से होना चाहिए कि मृदा उर्वरा शक्ति का ह्रास न हो साथ ही पौधों को संतुलित पोषण प्राप्त हो और उर्वरकों के असंतुलित प्रयोग से मृदा, एवं पर्यावरण पर होने वाले दुष्प्रभवों को कम किया जा सके। मृदा की समस्याओं, उसके जैविक कार्बन एवं पोषक तत्वों के बारें में उचित जानकारी नही हो तब तक उसका उचित प्रबंधन नही किया जा सकता है। मृदा परीक्षण में निम्न पोषक तत्वों की जाँच की जाती है।

मृदा पीएच व विधुत चालकता के आधार पर मृदा अम्लीय, क्षारीय व लवणीय समस्या की जानकारी प्राप्त होती है अम्लीय मृदा की समस्या

तालिका 3 : मृदा परीक्षण के मापदण्ड

मापदंड	मान	विवरण
पी.एच.	6.5–7.5, 8.5 से अधिक, 6.5 से कम	सामान्य मृदा, क्षारीय मृदा अम्लीय मृदा
विधुत चालकता	0–2 डेसी साइमन प्रति मीटर, 2 और उससे अधिक	सामान्य लवणीय मृदा

मुखतः अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में होती है तथा इसके सुधार हेतु प्रयोगशाला में चूने की आवश्यकता परिक्षण के आधार पर चूने का प्रयोग किया जाता है। क्षारीय एवं लवणीय मृदा की समस्या प्रायः शुष्क जलवायु व खराब गुणवत्ता वाले क्षेत्रों में पायी जाती है। क्षारीय मृदा के सुधार हेतु प्रयोगशाला में जिप्सम की आवश्यकता परिक्षण के आधार पर जिप्सम की मात्रा उपयोग वर्षा या सिंचाई से पुर्व अच्छी प्रकार से मृदा में मिलाकर किया जाता है। लवणीय मृदा में घुलनशील लवणों की अधिक मात्रा के कारण बीज का अंकुरण और विकास पर बुरा प्रभाव होता है, लवणीय मृदा के सुधार हेतु लवण को खुर्च कर या अच्छे गुणवत्ता वाले जल में घोलकर निछालन (लिचिग) द्वारा कम किया जाता है इसके साथ–साथ अच्छी गुणवत्ता वाले जैविक खादों का प्रयोग करना चाहिए।

मृदा परिक्षण कराने से प्राप्त रिपोर्ट के आधर पर उर्वरक डालने की व्याख्या उपरोक्त तालिका में की गई हैं। उर्वरक की मात्रा राज्य व फसलों के अनुसार अलग–अलग सिफारिश की गई। उदाहरण के लिए किसान की मृदा रिपोर्ट में नत्रजन की मात्रा और उसको गेंहूँ के लिए यदि 120 किलो नत्रजन डालने की सिफारिश की गई है तो उसे नत्रजन की मात्रा 25 % कम करके अर्थात 90 किलो प्रति हैक्टर कुल नत्रजन की मात्रा गेहुं के लिए डाले।

तालिका 3: मृदा में उपलब्ध मृख्य पोषक तत्वों की व्याख्या

पोषक तत्व	बहुत निम्न	निम्न	मध्यम	उच्च	अत्यधिक
जैविक कार्बन (किग्रा./हेक्टेयर)	0.25 से कम	0.25 से 0.50	0.50 से 0.75	0.75 से 1.0	1.0 से अधिक
उपलब्ध नत्रजन (किग्रा./हेक्टेयर)	140 से कम	140 से 280	280 से 560	560 से 700	700 से अधिक
उपलब्ध फास्फोरस (किग्रा./हेक्टेयर)	5 से कम	5 से 10	10 से 25	25 से 30	30 से अधिक
उपलब्ध पोटाश (किग्रा./हेक्टेयर)	60 से कम	60 से 120	120 से 280	280 से 340	340 से अधिक
क्षेत्र अनुसार उर्वरकों की सिफारिश मात्रा	50% बढ़ाकर डालें	25% बढ़ाकर डालें	सामान्य सिफारिस डालें	25% कम डालें	50% कम डालें

संरक्षण कृषि

संरक्षण कृषि में भूमि की सतह पर फसल अवशेषों को रखते हुए भूमि को बिना या कम से कम जुताई करके फसलों को उगाना तथा फसल चक्र में दलहनी फसलों का समावेश करके खेती की जाती है।

संरक्षण खेती के सिद्धांत

1. फसलें उगाने की ऐसी प्रणालियां विकसित करना और उन्हें बढ़ावा देना, जिनके कारण मृदा में सबसे कम व्यवधान होता है जैसे न्यूनतम एवं शून्य जुताई।
2. मृदा की सतह पर फसल अवशेषों को छोड़ने तथा आवरण फसलें उगाने आदि विधियों को अपनाकर मृदा की ऊपरी सतह को ढक कर रखना अर्थात फसल पलवार का प्रयोग।
3. फसल चक्र, अंतः खेती, कृषि वानिकी आदि के माध्यम से विविधिकृत फसल को बढ़ावा देना अर्थात फसल विविधिरण।

संरक्षण खेती में मृदा में कम से कम यात्रिंक छेड़छाड़ करने, मृदा सतह के जैविक पलवार से ढके रहने तथा फसल चक्र अपनाने से मृदा की जैविक मृदा की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणवत्ता में लगातार वृद्धि होती है। इसके कारण मृदा का जल तथा वायु संचार बढ़ जाता है, जबकी संरक्षण खेती में मृदा सतह पर फसल अवशेषों की परत होने के कारण मृदा कणों को बांधे रखने की क्षमता बढ़ जाती है, जिससे जल तथा वायु कटाव की तीव्रता कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त संरक्षण खेती में उगाई जाने वाली दलहन फसलें भी मृदा को जल तथा वायु कटाव से संरक्षण प्रदान करती है। इसलिए संरक्षण खेती बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। किसान रासायनिक उर्वरकों के संतुलित प्रयोग के साथ ही जैविक खादों एवं जैव उर्वरकों का यथासम्भव इस्तेमाल से कृषि की लागत को कम करके अधिक उत्पादन लेने व मृदा स्वास्थ्य को बनाये रखने व सुधार के लिए उपरोक्त सभी तकनिकीयों का प्रयोग कर सकते है।

टिकाऊ खेती में नैनो उर्वरक की भूमिका

राजेश कुमार, खजान सिंह, बलदेव राम एवं वर्षा गुप्ता
यांत्रिक कृषि फार्म एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र उम्मेदगंज, कोटा

भारत में कृषि बहुसंख्यक आबादी के लिए आजीविका का साधन है और इसे कभी भी कम करके नहीं आंका जा सकता है। भारत में बढ़ती जनसंख्या, बढ़ती औसत आय और वैश्वीकरण के प्रभाव से मात्रा, गुणवत्ता और पौष्टिक भोजन और विभिन्न प्रकार के भोजन की मांग बढ़ेगी। इसलिए उपलब्ध कृषि योग्य भूमि से अधिक मात्रा में उत्पादन करने का दबाव बढ़ता रहेगा। भारत की खाद्य सुरक्षा अनाज की फसलों के उत्पादन के साथ–साथ बढ़ती आय के साथ बढ़ती आबादी की मांगों को पूरा करने के लिए फलों, सब्जियों और दूध के उत्पादन में वृद्धि पर निर्भर करती है। वैश्विक खाद्य सुरक्षा, खाद्य उत्पादन और खाद्य उत्पादकता में वृद्धि प्राप्त करने के लिए, फसलों की खेती, उपज और उत्पादकता में सुधार के लिए नवीन और भविष्य की प्रगति और प्रौद्योगिकियों की पुष्टि करना आवश्यक है। उर्वरकों का सफल प्रयोग किसानों के लिए लाभजनक कृषि का आधार माना गया है। लेकिन उर्वरकों का संतुलित मात्रा में प्रयोग करना आवश्यक है यदि उर्वरकों का संतुलित उपयोग न हो, तो वे पर्यावरण के लिए हानिकारक भी हो सकते हैं। पारम्परिक उर्वरकों का उत्पादन, भंडारण एवं स्थानांतरण, जहां एक प्रमुख चुनौती है, वहीं इनके असंतुलित प्रयोग के दुष्प्रभाव वृहत रूप में देखे गए हैं। इसके साथ ही इनकी उपयोग दक्षता भी दिन–प्रति दिन कम होती जा रही हैं। अतः उच्च पोषक तत्वों के साथ–साथ मृदा विशेषताओं को बढ़ाने के लिए नैनो उर्वरकों के रूप में एक आशाजनक विकल्प के रूप में तेजी से उभर रही है। कृषि एवं खाद विज्ञान के क्षेत्र में इस प्रौद्योगिकी के विभिन्न घटकों का महत्वपूर्ण योगदान है। नैनो उर्वरक में पोषक तत्वों के नैनो फॉर्मूलेशन शामिल होते है। जो रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग के संभावित प्रतिकूल प्रभावों के साथ–साथ उर्वरक अनुप्रयोग आवृत्ति को भी कम करते हैं। इसके अलावा, नैनो उर्वरकों के प्रयोग से रासायनिक अवशेष में भी भारी कमी आती है। इससे न सिर्फ पर्यावरण की सुरक्षा सुनिश्चित होती है, बल्कि लागत की बचत होती है। नैनो जैव उर्वरकों के उपयोग से पारंपरिक उर्वरकों के इस्तेमाल में 50–75 प्रतिशत की कमी आने की उम्मीद है।

नैनो उर्वरक पारंपरिक उर्वरकों, मृदा कोलाइड्स और पौधों के भागों से निकाले गए नैनो कण होते है। ये 1–100 नैनो मीटर व्यास के आसपास होते है। विशिष्ट सतह क्षेत्र और अत्यंत सूक्ष्म आकार होने के कारण, ये नियंत्रित एवं धीमी गति से पौषक तत्वों को उन्मुक्त करते हैं। ये मृदा की उर्वराशक्ति, उत्पादकता और कृषि उत्पादों की गुणवत्ता और पोषक तत्व की उपयोग दक्षता में सुधार के लिए जरूरी है। नैनो सामग्री की उच्च प्रतिक्रियाशीलता के कारण, ये उर्वरकों के साथ परस्पर क्रिया कर पौधों को पोषक तत्वों के बेहतर एवं प्रभावी अवशोषण में सक्षम बनाते हैं। नैनो उर्वरक पोषक तत्वों की लीचिंग व वाष्पीकरण द्वारा होने वाली हानि को कम करते हैं। ये अधिक प्रतिक्रियाशील होने के कारण पोषक तत्वों की जैव उपलब्धता में भी सुधार करते हैं। इसके साथ ही पर्यावरणीय जोखिमों को भी कम करते हैं।

नैनो उर्वरक मुख्यतः दो प्रकार के होते है, मैक्रो और सूक्ष्म पोषक तत्व नैनो उर्वरक। नैनो–उर्वरक, मैक्रो पोषक तत्वों (जैसे–नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, मैग्नीशियम, सल्फर और कैल्शियम) को सटीक मात्रा में वितरित करने के उद्देश्य से नैनो सामग्री के साथ समेकित रूप में एक या अधिक पोषक तत्व शामिल होते है।

नैनो उर्वरकों का महत्व

मृदा के भौतिक और रासायनिक गुण, गैसीय नुकसान, लीचिंग, अपवाह और उर्वरक विशेषताएं पौधों की पोषक तत्व उपयोग दक्षता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। पोषक तत्वों के उपयोग की प्रभावकारिता में सुधार के मध्यम से फसल उत्पादन में वृद्धि स्थाई कृषि और पर्यावरणीय स्वास्थ्य के प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। पर्यावरणीय अखंडता, पर्यावरणीय स्थिरता और आर्थिक स्थिरता के साथ जनसंख्या की बढ़ती खाद्य मांगों को पूरा करने के लिए नैनो प्रौद्योगिक फसलों के उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कृषि के क्षेत्र में नैनो एनकैप्सुलेशन के प्रयोग ने बहुलक मैट्रिक्स के भीतर उर्वरकों के एनकैप्सुलेशन और प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में उर्वरकों के वाष्पीकरण/गिरावट को रोककर प्रभावकारिता को बढ़ाया जा सकता है।

उत्पादन विधियां

नैनो पोषक पदार्थ के साथ मुख्यतः तीन विधियों से एनकैप्सुलेशन किया जा सकता है।

- नैनो सामग्री में समाहित
- नैनो सामग्री की एक परत के साथ लेपित
- नैनो इमल्शन के रूप में वितरित

नैनो उर्वरक के रूप में नाइट्रोजन

फसलों में नैनो यूरिया का प्रयोग मृदा में यूरिया के अतिरिक्त उपयोग को कम करके संतुलित पोषण प्रदान करता है। पारंपरिक यूरिया, पर्यावरण प्रदूषण का कारण बनती है। इससे मृदा के स्वास्थय को नुकसान पहुंचता है और यह पौधों को रोग और कीट के संक्रमण के लिए अधिक संवेदनशील बनाता है। यूरिया, फसल की परिपक्वता और उत्पादन हानि में देरी करता है। नैनो यूरिया, फसलों को मजबूत एवं स्वस्थ बनाता है और उन्हें गिरने से बचाता है। इफको नैनो यूरिया के एक बैग के बराबर काम करती है।

नैनो यूरिया (तरल) दुनिया का पहला नैनो उर्वरक है पहला नैनो यूरिया भारतीय किसान उर्वरक सहकारी लिमिटेड (इफको) द्वारा विकसित किया गया है। भारत की अधिकांश मिट्टी में उपलब्ध नाइट्रोजन की कमी पाई जाती है। फसल नाइट्रोजन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए, किसान पारंपरिक यूरिया को 2–3 भागों में बेसल या टॉप ड्रेसिंग के रूप में लगाते हैं, लेकिन इसकी कम उपयोग दक्षता के कारण फसल द्वारा मुश्किल से 30–50 प्रतिशत का उपयोग किया जाता है। इसे आसानी से एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जा सकता है, पर्यावरण के अनुकूल और इसका उत्पादन किसी भी तरह से हमारे पर्यावरण को प्रदूषित या नुकसान नहीं पहुंचाता है।

नैनो यूरिया (तरल) के लाभ

- नैनो यूरिया का छोटा आकार (20–50 एन एम) फसल के लिए इसकी उपलब्धता को 80 प्रतिशत से अधिक बढ़ा देता है।
- यह पौधों के अंदर नत्रजन और अन्य पोषक तत्वों के अवशोषण और आत्मसात करने के लिए मार्ग को ट्रिगर करता है।
- यह कटी हुई फसल की उपज की पोषण गुणवत्ता को बढ़ाता है।
- फसल उत्पादकता में वृद्धि और इनपुट लागत में कमी करके किसानों की आय में वृद्धि करता है।
- उच्च दक्षता के कारण, नैनो यूरिया पारंपरिक यूरिया की आवश्यकता को 50 प्रतिशत तक कम कर सकता है।
- नैनो यूरिया हवा और पानी की गुणवत्ता को संरक्षित करता है ।

दर, समय और प्रयोग की विधि

एक लीटर पानी में 2 से 4 मिली नैनो यूरिया मिलाएं और सक्रिय विकास अवस्था में फसल के पत्तों पर स्प्रे करें। दो चरणों में पर्ण स्प्रे लगाने से सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। प्रथम सक्रिय अवस्था/शाखाओं की अवस्था में पहला छिड़काव (30–35 दिन बुवाई के पश्चात या पौधरोपण के 20 से 25 दिन बाद) तथा दूसरी स्प्रे पहली स्प्रे के 20–25 दिन बाद या फसल में फूल आने से पहले करें। जब नैनो यूरिया को पत्तियों पर छिड़का जाता है, तो यह आसानी से रंध्रों और अन्य छिद्रों के माध्यम से प्रवेश कर जाता है और पौधों की कोशिकाओं द्वारा आत्मसात कर लिया जाता है। अप्रयुक्त नाइट्रोजन को पौधे के रिक्तिका में संग्रहित किया जाता है और आवश्यकता के अनुसार उचित वृद्धि और विकास के लिए धीरे–धीरे छोड़ा जाता है।

जिंक ऑक्साइड नैनो कण

यह सूक्ष्म पोषक तत्व कई एंजाइमो के भीतर सहकारक, धातु घटाकों और अन्य नियामक कारको के रूप में कार्य करता है। इस प्रकार पौधों की कायिकी प्रतिक्रियाओं के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण साबित होता है। यह ज्यादातर या तो जिंक सल्फेट के रूप में वितरित किया जाता है, जो आमतौर पर मृदा के भीतर जिंक की कमी को संतुलित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। पौधों को जिंक की अनुपलब्धता के कारण उर्वरक के रूप में इनकी प्रयोज्यता सीमित होती जा रही है। इस संदर्भ में, जिंक एनपी, जिंक की कमी को दूर करने के लिए एक आशाजनक भूमिका निभाता है। वे इसके स्थूल रूप की तुलना में अत्यधिक प्रतिक्रियाशील होते है।

आयरन ऑक्साइड नैनो कण

इसकी नवीन प्रयोज्यता को इसके नैनो आकार और चुंबकीय विशेषताओं के कारण कृषि क्षेत्र में नैनो उर्वरकों के रूप में उपयोग किया गया था। नैनो उर्वरक के रूप में आयरण ऑक्साइड नैनो पार्टिकल्स की दक्षता कई अपर्याप्तता वाले रासायनिक उर्वरकों को प्रतिस्थापित कर सकती है।

नैनो उर्वरकों का लाभ

उच्च पोषक तत्व दक्षता वाले नए उर्वरकों को विकसित करने और पर्यावरण के अनुकूल होने के लिए व्यावहारिक दृष्टिकोण से अनुसंधान करने की तत्काल आवश्यकता है। यूरिया–संशोधित जिओलाइट्स को नाइट्रोजन स्रोत के रूप में, हाइड्रोक्साइपेटाइट और मेसोपोरस सिलिका नैनोमटेरियल्स की पहचान धीमी/नियंत्रित स्रवण वाले नैनो उर्वरकों के रूप में गई है। इसमें आशाजनक परिणाम पाए गए है।

- **उच्च पोषक तत्व उपयोग दक्षता:** जड़ और पत्तियों के छिद्रों के आकार से छोटे कण होने कारण ये पौधे में अधिक मात्रा में ग्रहण हो जाते हैं। इनके प्रयोग से फसल की बढ़वार और पोषक तत्वों के उपयोग की प्रभावकारिता में सुधार होता है एवं पोषक तत्वों के नुकसान में कमी होती है।

- **पोषक मूल्य और स्वास्थ्य:** नैनो उर्वरक पौधों के अंगों की वृद्धि और प्रकाश संश्लेषण जैसी चयापचयी प्रक्रियाओं को बढ़ाते है। इससे उपज अधिक होती है। पोषक तत्वों की अधिक उपलब्धता फसलों के गुणवत्ता मानकों जैसे–प्रोटीन, तेल सामग्री, चीनी सामग्री आदि को बढ़ाने में मदद करती है। पौधे को नैनो पोषक तत्वों की अधिक उपलब्धता, रोग, पोषक तत्वों की कमी और अन्य जैविक और अजैविक तनाव से बचाते हैं। इसके परिणामस्वरूप उपभोग के लिए बेहतर उपज और गुणवत्ता वाले खाद्य उत्पाद उपलब्ध होते है।

- **नियंत्रित रूप से पौधों का प्रयोग करना:** नैनो उर्वरक फसल के पौधे द्वारा अधिक ग्रहण करने के लिए संतुलित पोषक तत्व/उर्वरक की गति और खुराक को नियंत्रित करते है। पोषक तत्वों की पूर्ति की वास्तविक अवधि बढ़ जाती है।

- **उर्वरकों की हानि और मांग कम होना:** स्रवण की धीमी दर के कारण नैनो उर्वरक पौधों द्वारा अधिक मात्रा में ग्रहण किए जा सकते हैं। इनकी लीचिंग कम होती है और ये उर्वरकों की मांग कम करते है।

- **मृदा गुणवत्ता मे सुधार:** जलधारण क्षमता और मृदा की गुणवत्ता में सुधार एवं सूक्ष्ममजीवों की गतिविधियां बढ़ जाती है।

सावधानियां

कृषि में नैनो प्रौद्योगिकी का प्रयोग एवं प्रचलन बहुत बढ़ रहा है। इनके भिन्न स्वरूप के कारण इनके उपयोग में कुछ सावधानियां बहुत आवश्यक हैं जैसे:

- **नैनो कणों का परिवर्तन:** प्रतिक्रियाशीलता के गुण के कारण नैनो सामग्री पर्यावरण के विभिन्न घटकों के साथ प्रतिक्रिया कर सकती है। इससे भौतिक एवं रासायनिक गुणों में और परिवर्तन होता है। नैनो सामग्री मृदा के घटकों के साथ परस्पर क्रिया कर सकती है और विषाक्तता पैदा कर सकती है।

- **नैनो कणों का संचय:** नैनो उर्वरक पौधों के हिस्सों में जमा हो सकते है। इससे विकास अवरोध, प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों का निर्माण और कोशिकाओं की मृत्यु हो सकती है। यह खाद्य भागों में जमा हो सकती है और जब सेवन किया जाता है, तो यह मानव स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बन सकता है।

- **कृषि श्रमिको के लिए सुरक्षा की चिंता:** नैनो सामग्री की प्रतिक्रियाशीलता और परिर्वतनशील ने उन श्रमिकों के लिए सुरक्षा चिंताओं को बढ़ा दिया है, जो इनके निर्माण और क्षेत्र में प्रयोग के दौरन संपर्क में आते है।

मृदा में बोरान और मोलिबिडनम की उपयोगिता

बृजेश यादव एवं पी. के. गुप्ता
कृषि विज्ञान केन्द्र, दिल्ली

भारत में लगभग 33 और 13 प्रतिशत मृदा में क्रमशः बोरान और मोलिबिडनम की कमी पाई गई है। फसलों में बोरान की कमी से फल–फूल बनने की समस्या आती है। इसके साथ फसल की उपज में कमी, फलों व दानों का असामान्य आकार तथा रंगहीन फूल बनना भी देखा गया है। बोरान की कमी के स्पष्ट लक्षण आखिरी कलियों में देखे जाते है। इसके साथ पौधों के पत्तों का अधिक पास–पास आना तथा पौधों का झाड़ीनुमा प्रतीत होने पर बोरान के कमी के लिए बोरेक्स, बोरिक एसिड, सोलबेट व ग्रेनुबोट इत्यादि रसायनों का प्रयोग किया जा सकता है। मोलिबिडनम की कमी से पत्ते पर हरे व पीले रंग के चितकबरे धब्बे दिखाई देते है। जो प्रमुख रूप से पौधे के पुराने व मध्यम पत्तों पर दिखाई देते है। मोलिबिडनम की कमी को दूर करने के लिए सोडियम सोलिब्डेट, अमोनियम मोलिब्डेट इत्यादि रसायन प्रयोग में लाये जा सकते है। बोरान व मोलिब्डिनम की पौधों को आवश्यक रूप में क्रमशः के वेरिगटन (1923) व अरनोन व स्टाट (1939) ने पाया था। पौधों को आठ सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इनमें से बोरान व मोलिबिडनम ऋणात्मक सूक्ष्म पोषक तत्व है। जिसकी कमी के लक्षण पौधों मे स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

मृदा में बोरान की कमी : सूक्ष्म पोषक तत्वों में बोरान ही सिर्फ अधातु आयन है। जो भूमि की सतह पर बहुत ही कम मात्रा में पाया जाता है। आग्नेय चट्टानों की अपेक्षा स्थानातंरित चट्टानों में बोरान की मात्रा अधिक होती है। मृदा में बोरान के खनिज प्रमुख रूप से बोरेक्स कारनाईट कोलेमाइट, टुरमलीन, यूलैक्साइट तथा कोटोमाईट के रुप में पौधे भूमि से बोरान को आयन के रूप में प्राप्त करते है। आग्नेय चट्टानों से बनने वाली मृदा में अधिक निक्षालन होने से एवं शुष्क क्षेत्रों में पायी जाने वाली मृदा में बोरान की ज्यादा कमी पायी जाती है। बोरान की कमी आम तौर पर एक उच्च पी. एच. मिट्टी में भी पायी जाती है। क्योंकि इन स्थितियों में यह तत्व रासायनिक रूप में रहता है। परन्तु पौधों के लिए उपलब्ध नही हो पाता है।

पौधों में बोरान की भूमिका

उपयोगिता: पौधों को बड़ा होने में कई तरह के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। अगर पोषक तत्वों की कमी हो जाती है तो पौधों में कई तरह के रोग लग जाते है । जिससे फसल खराब हो जाती है। पौधों में जरूरी सूक्ष्म तत्वों के समूह में बोरान एक प्रमुख आवश्यक पोषक तत्व है। सामान्यतः पौधों में बोरान की मात्रा 40 से 200 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ (पी.पी.एम.) पायी जाती है

- बोरान पौधों की कोशिकाओं में घुलनशील रूप में होता है और उसकी झिल्ली को मजबूत बनाता है।
- बोरान तत्व पौधों की जड़ों द्वारा अवशोषित जल व खनिज लवणों को जाइलम कोशिका के माध्यम से पौधे के सम्पूर्ण अंगों तक पहुंचाता है। अर्थात बिना बोरान के पौधे अपना जीवन चक्र पुरा नही कर पाते है।
- झिल्ली परम्परागत पादप क्रिया विधि जैसे फूलों में परागण, परागनली का निर्माण, फल व दाना बनना, पादप हार्मोन के उपापचयन एवं पौधों के सभी अंगो तक पहुंचाने का कार्य बोरान तत्व का है।
- बोरान जैविक पदार्थो के साथ अविघटनीय पदार्थ का निर्माण करता है यह कोशिका के निर्माण व सहनशील होने, लिगनिन बनाने तथा जलवाहक कोशिकाएं बनाने के लाभदायक होता है। यह फसलों को सुखा सहने की क्षमता प्रदान करता है
- यह पराग नली बनने व वृद्धि में सहायक होता है। यह प्लाज्मा झिल्ली के जुड़े हाइड्रोजन ए.टी.पी. ऐज की सक्रियता को बढ़ाता है। जिससे पौधे विभिन्न आयन को भूमि से ग्रहण कर लेते है ।

कमी के लक्षण : जब पौधों के बोरान की मात्रा 5 से 30 पी.पी.एम. होती है तो उनमें बोरान की कमी कही जाती है।

- एक वर्षीय फसलों में बोरान की मात्रा भिन्न–भिन्न पायी जाती है। जैसे उड़द की फसल में बोरान की कमी में दानों मे कोई लक्षण प्रकट नही होते परन्तु उपज में 50 प्रतिशत तक कमी आ सकती है ।
- इसके अतिरिक्त उपज में कमी, दानों तथा फुलों का आकार बदल जाना इत्यादि लक्षण भी देखे जा सकते है।
- पत्तों के बीच की दूरी कम होने से पौधे झाड़ीनुमा हो सकते है। पौधों की आकृति विकृत हो जाती है। कलिया, फूल व बीज कम बनते है। फूलों में निषेचन की क्रिया बाधित होती है ।
- पौधों की उपरी बढ़वार रूकना, इन्टरनोड की लम्बाई का कम होना, पौधों में बौनापन होना, जड़ का विकास रूकना, इसके साथ–साथ कुछ पौधों के तनों मे कठोर कोशिकाएं बनने से पौधों के अन्दर से सुख जाते है।
- इसी प्रकार मूंगफली व सोयाबीन के दानों में खाली स्थान रह जाते है। जिसे होलो हर्ट के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा चुकन्दर तथा फूल गोभी में होलों स्टेम, तम्बाकू में टॉप सिकनेस एवं सेब में इन्टरनल कार्क इत्यादि विशेष प्रकार के लक्षण बोरान की कमी से देख जाते है।

बोरान की कमी को दूर करने के उपाय : वर्तमान में बहुत से रसायन जिसमें बोरान पाया जाता है। उसका भूमि में उपयोग तथा स्प्रे द्वारा पौधों पर सीधा प्रयोग करने के संबंध में बहुत ही परीक्षण किए गए। विभिन्न फसलों हेतु भूमि में बोरान के लिए बोरोक्स का प्रयोग करना बहुत ही उपयोगी पाया गया। इसके अतिरिक्त बोरिक एसिड, सोलुबोर, कोलमानाइट इत्यादि का प्रयोग में लाए जा सकते हैं। भूमि में बोरान की

बोरान की कमी से
फूल गोभी में होलों स्टेम

बोरान की कमी से पपीता में
फलों में विकृति के लक्षण

तालिका : 1 बोरॉन रसायन एवं उनमें उपस्थित पोषक तत्व की मात्रा (%)

क्र.सं.	रसायन या यौगिक	उपस्थित पौषक तत्व की मात्रा (%)
1.	बोरिक एसिड	17
2.	बोरैक्स	10.50
3.	सोलुबोर	20
4.	कोलमानाइट	10
5.	बोरॉन फ्रिट्स	2.6

कमी होने पर इनकी 0.5 से 2.5 किलोग्राम प्रति हैक्टर प्रयोग करते है। मृदा एवं पौधों दोनों में डालने से फसलोंत्पादन पर विशेष लाभ देखा गया है।

भूमि मे मोलिब्डिनम की कमी : भूमंडल में मोलिब्डिनम सबसे कम मात्रा में पाया जाने वाला सूक्ष्म पोषक तत्व है। मृदा मे मोलिब्डिलम के खनिज स्रोतों में मोलिब्डिलम, इलसीमानाइट, बुल्कीनाइट, फेरीमोलिब्डाइट तथा पोलाइट इत्यादि शामिल है। आंध्रप्रदेश, गुजरात, हरियाणा और मध्यप्रदेश की क्रमशः 49, 10, 28 एवं 18 प्रतिशत मृदा में मोलिब्डिनम की कमी पाई जाती है। मोलिब्डिनम की कमी अम्लीय मृदा में उगाई जाने वाली फसलों में देखी जाती है। अम्लीय वातावरण होने पर मृदा में मोलिब्डिनम, लोहा व एल्युमिनियम तथा सिलिकेट के साथ मिलकर अघुलनशील यौगिक बनाता है। पीट क्षारीय तथा कम निक्षालन वाली मृदा में मोलिब्डिनम अधिक मात्रा में पाया जाता है। जो मिट्टी में $MoO4^{--}$ के रूप में उपलब्ध होता है । इसका अवशोषण मृदा पीएच पर बहुत निर्भर करता है। अम्लीय मृदा में दर बहुत ही कम मात्रा में उपलब्ध रहता है। लेकिन पीएच बढ़ने पर इसकी मात्रा भी मिट्टी मे बढ़ जाती है। मृदा जल में मोलिब्डिनम प्रमुख रूपों में पाया जाता है। जैसे जैसे अभिक्रिया में अर्थात पीएच मान में वृद्धि होती है आयन की सांद्रता बढ़ जाती है। पौधें इसी आयन को सरलता से भूमि से ग्रहण करते है। इसलिए मृदा में मोलिब्डिनम की उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारकों में प्रमुखतः मृदा अभिक्रिया, आयरन तथा एल्युमिनियम आयन की मात्रा, मृदा कणाकार, मौसम तथा फसलों के प्रकार इत्यादि शामिल है।

पौधों में मोलिब्डिनम की भूमिका

उपयोगिता : मोलिब्डिनम की पौधों को अनेक कार्यो के लिए आवश्यकता होती है। स्वस्थ पौधों में मोलिब्डिनम की मात्रा 0.1 से 2 पीपीएम तक पायी गयी है। यह पौधों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायता करता है क्योंकि यह नाइट्रेट रिडक्टेज को क्रियाशीलता में भागीदारी निभाता है। यह पौधों में प्रोटीन निर्माण में भी सहायक होता है। तथा परागकण बनने व उसकी आयु को प्रभावित करता है।

- मोलिब्डिनम सूक्ष्म रूप पौधो में मोबाइल तत्व है जो फ्लोएम और नाड़ी पैरेकाइमा में स्थित होता है। और पौधों में नाइट्रोजन के रासायनिक परिवर्तन के लिए सहयोगी है।
- मोलिब्डिनम और फलियाँ जैसे गोभी, टमाटर, सलाद, सुरजमुखी और मक्का में मिट्टी में नाइट्रोजन को पौधों में नाइट्रेट के रुप में अवशोषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।

कमी के लक्षण : यदि पौधों में मोलिब्डिनम की मात्रा 0.1 पीपीएम से कम हो तो उनमें इसकी कमी कही जा सकती है।

- जिन पौधों में मोलिब्डिनम की कमी होती है वहाँ नाइट्रेट पत्तियों में जमा हो जाता है और पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन निर्माण नही होने देता है। इसमें यह नतीजा निकलता है कि पौधों में नाइट्रोजन की कमी के कारण पौधों का विकास अवरूद्ध हो जाता है।
- मोलिब्डिनम कमी के लक्षण नाइट्रोजन की कमी के लक्षण के समान होते है। जिन पत्तों की शिरायें हाथ की उंगलियों की तरह होती है उनमें मोलिब्डिनम की फली के लक्षण चितकबरे पत्तों के रूप में प्रकट होते है।

मोलिब्डिनम की कमी को दूर करने के उपाय : मोलिब्डिनम की कमी को मृदा में मोलिब्डिनम रसायन डालने या पौधो पर स्प्रे करने से दूर किया जा सकता है। मोलिब्डिनम की कमी को मृदा का पी. एच. चुने द्वारा उपयोग कर दूर किया जा सकता है। शुष्क दशाओं में उगाई जाने वाली फसलों के लिए मोलिब्डिनम रसायन डालने की अपेक्षा उनका पत्तों पर छिड़काव करना ज्यादा लाभदायक पाया गया है। अधिकांश तौर पर मोलिब्डेट तथा सोडियम मोलिब्डेट का उपयोग किया जाता है। क्योंकि यह दोनों रसायन पानी में घुलनशील है।

मोलिब्डिनम की कमी से मक्का की फसल पर लक्षण

मोलिब्डिनम की कमी पत्तियों पर लक्षण

तालिका : 2 मोलिण्डेलम रसायन एवं अन्य उपस्थित पोषक तत्व की मात्रा

क्र.सं.	रसायन या यौगिक	उपस्थित पौषक तत्व की मात्रा (%)
1.	सोडियम मोलिब्डेट	39
2.	अमोनियम मोलिब्डेट	52
3.	मोलिब्डिनम ट्राईऑक्साइड	66
4.	मोलिब्डिक एसिड	53
5.	मोलिब्डिनम फ्रिट्स	0.1 से 0.4

स्वयं सहायता समूह एवं सहकारी समितियों का गठन एवं महत्व

मोहम्मद युनुस, अर्जुन कुमार वर्मा, अरविन्द नागर एवं सेवाराम रुन्डला
कृषि विज्ञान केन्द्र, झालावाड

स्वयं सहायता समूह (एस.एच.जी.) आपस में अपनापन रखने वाले एक जैसे सूक्ष्म उद्यमियों का समूह है जिसमें समूह के सदस्यों से प्राप्त आमदनी को अपने तरीके से बचत करके उसे एक फंड के रूप में एकत्रित करते है और उस फंड को समूह के सदस्यों को उनकी जरूरतों के लिये समूह द्वारा तय ब्याज अवधि और अन्य शर्तो पर दिया जाता है।

स्वयं सहायता समूह का उद्देश्य

स्वयं सहायता समूह का उद्देश्य वित्तिय संसाधनो के साथ औपचारिक प्रणाली के अनुरूप लचीली, संवेदी और समयानुकूल जरूरतमंदो की क्रेडिट आवश्यकताओं को पूरा करना, बैंको और ग्रामीण जनता के बीच आपसी विश्वास का वातावरण बनाना, आदि है। वित्तीय संस्थाए समाज के जिन वर्गो तक नहीं पहुँच पाती हैं उन वर्गो में बचत की आदत और ऋण की सुविधाओं के प्रयोग को प्रोत्साहित करना है। महिला स्वयं सहायता समूह का उद्देश्य महिलाओं को बचत करना सीखाना है एवं ऋण लेने के लिए आधार तैयार करना है। इसके अन्तर्गत आय अर्जित करने की क्रियाओं को समूह में पूर्ण किया जाता है जिससे महिलाओं की निर्णय शक्ति बढ़े तथा वे आर्थिक रूप से सशक्त बने। कहा जाता है कि एकता में शक्ति होती है। कोई भी कार्यक्रम अकेले सम्पन्न नहीं कराया जा सकता है। किन्तु वही कार्यक्रम एक साथ मिलकर करने पर जल्दी एवं व्यवस्थित रूप से पूर्ण होता है। आज के समय में महिलाओं के सशक्तिकरण की बहुत आवश्यकता है। यदी सशक्तिकरण के प्रयास से महिला समूह बनाकर एक साथ मिल–जुलकर अपनी योग्यतानुसार कार्य करें तो उसके सकारात्मक परिणाम आयेंगे। महिला समूह में आपसी सहयोग से क्रियात्मक व कलात्मक कार्य करके वे उससे धन कमाकार आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। स्वयं सहायता समूह का महिलाओं के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण योगदान है। दल में वे भ्रमण, गोष्ठी, प्रदर्शनी में भाग लेकर व्यावहारिक ज्ञान बढ़ा सकती है। स्वयं सहायता समूह द्वारा वे एक साथ आर्थिक, सामाजिक व विकास की गतिविधियों में सक्रिय हो सकती है। समूह में रहकर सूचना, ज्ञान, अनुभव व कौशल में वृद्धि कर सकती है। आपस में सहयोग से पूरे दल को सशक्त बना सकती है।

स्वयं सहायता समूह का गठन

स्वयं सहायता समूह का गठन करते समय कुछ बातें ध्यान में रखनी चाहिए ताकि समूह सफलतापूर्वक चल सके। समूह में 10–20 सदस्य होने चाहिए जो परस्पर सहयोग से काम करने वाले होने चाहिए। समूह के सदस्यों की आयु 18 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए। समूह के सभी सदस्य एक दूसरे के आर्थिक व सामाजिक स्तर का ध्यान रखते है तथा सहमति के आधार पर समूह का नामकरण करते है। समूह में स्त्री तथा पुरूष साथ या अलग–अलग भी हो सकते है। यह समूह समय–समय पर सामाजिक बुराईयों को समाधान करता है। बैंक खाता समूह के नाम पर खोला जाता है एवं बचत राशि सभी सदस्यों में बराबर रूप से मिलती है। स्वयं सहायता समूह में सर्व सहमति से अध्यक्ष, सचिव व कोषाध्यक्ष चुना जाता है जिस का कार्यकाल भी निर्धारित होता है। समय–समय पर समूह की बैठक होती रहती है जिसमें तय किया जाता है कि ऋण न लौटाने वाले पर उचित कार्यवाही की जाए तथा आवश्यकता पढ़ने पर समूह द्वारा आकस्मिक बैठक बुलाने का भी प्रावधान होता है। समूह में ज्यादा बचत राशि होने पर बैंक डाकघर में जमा कराया जाता है। यदि समूह कोई भी व्यवसाय करना चाहता है तो उसे ऋण मिल जाता है। समूह एक रजिस्टर रखता है जिसमें आय तथा व्यय का विवरण रखा जाता है। महिला दल खाली समय में स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामान से क्रियात्मक व कलात्मक सामान तैयार करके उसे मेले व बाजार में बेचती है, जिससे आय होती है।

स्वयं सहायता समूह से लाभ

व्यक्ति, समाज एवं देश के विकास के लिए धन एक आवश्यक साधन है जिसकी पूर्ति व्यक्ति अपने बचत के द्वारा एवं अन्य स्त्रोत जैसे बैंक, कॉपरेटिव सोसायटी इत्यादि के द्वारा करता है। बैंक एवं अन्य ऋण के स्त्रोतों से ऋण लेना व्यक्ति की साख पर निर्भर करता है एसी स्थिति में महिलाओं के लिए और भी समस्या बनी रहती है। आवश्यकतानुसार ऋण की उपलब्धता के लिए स्वयं सहायता समूह कारगर साबित होते है। समूह बनाने से बैंक में साख बनती है जिससे उन्हें आसानी से ऋण मिलता रहता है। इस कारण महिलाओं में निर्णय क्षमता व आत्मनिर्भरता में वृद्धि होती है, जिससे आर्थिक व सामाजिक समस्याओं का समाधान होता है। समाज में उनकी साख बढ़ती है साथ ही उन्हें काम के लिये दूसरी जगहों पर नहीं जाना पड़ता जिससे गांव पलायन की समस्या से निजात मिलती है। समय पर धन की उपलब्धता से महिलाओं के अपने रहन–सहन एवं जीवन स्तर में सुधार होता है साथ ही वे अपने बच्चों की शिक्षा एवं परवरिश एक अच्छे ढ़ंग से कर सकती है। आवश्यकता पढ़ने पर बैंक, कॉपरेटिव सोसायटी व अन्य सोसायटी से भी आसानी से ऋण मिल जाता है। समूह के लाभ को देखकर समाज की अन्य महिलाओं को भी प्रेरणा मिलती है जिससे एक उत्कृष्ट समाज का निर्माण होता है।

सहकारी समिति

लोगों का ऐसा संघ है जो अपने पारस्परिक लाभ (सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक) के लिए स्वेच्छापूर्वक सहयोग करते हैं। औद्योगिक क्रांति के कारण आर्थिक तथा सामाजिक असंतुलन के परिणाम स्वरूप भारत में सहकारी आंदोलन की शुरूआत हुई। पूंजीवादी देश जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका तथा जापान और समाजवादी देश दोनों प्रकार के देशों में सहकारी समितियों ने विशेष स्थान बनाया है। 'सहकारी' शब्द का अर्थ है– साथ मिलकर कार्य करना। इसका अर्थ हुआ कि ऐसे व्यक्ति जो समान आर्थिक उद्देश्य के लिए साथ मिलकर काम करना चाहते हैं वे समिति बना सकते हैं। इसे 'सहकारी समिति' कहते हैं। यह ऐसे व्यक्तियों

की स्वयं सेवी संस्था है जो अपने आर्थिक हितों के लिए कार्ये करते है। यह अपनी सहायता स्वयं और परस्पर सहायता के सिद्धान्त पर कार्य करती है। सहकारी समिति में कोई भी सदस्य व्यक्तिगत लाभ के लिए कार्य नहीं करता है। इसके सभी सदस्य अपने–अपने संसाधनों को एकत्र कर उनका अधिकतम उपयोग कर कुछ लाभ प्राप्त करते हैं, जिसे वो आपस में बांट लेते हैं।

सहकारी समिति, संगठन का एक प्रकार है जिसमें व्यक्ति अपनी इच्छा से, समानता के आधार पर अपने आर्थिक हितों के लिए मिलकर कार्य करते हैं। उदाहरणार्थ, भेड़–बकरी पालक अपने जानवरों को उचित मुल्य पर बेचने हेतु एक सहकारी समिति बना सकते हैं जिसके माध्यम से वे अपने जानवरों को सीधे तौर पर माँस निर्यातकों से सम्बन्ध रखकर उनकों बेच सकते है। जिससे बिचोलियों के लाभ का उन्मूलन हो सकता है।

सहकारी समितियों की विशेषताएँ

स्वैच्छिक संस्था

एक सहकारी समिति व्यक्तियों की एक स्वैच्छिक संस्था है। एक व्यक्ति किसी भी समय सहकारी समिति का सदस्य बना सकता है, जब तक चाहे उसका सदस्य बना रह सकता है और जब चाहे सदस्यता छोड़ सकता है।

खुली सदस्यता

सहकारी समिति की सदस्यता समान हितों वाले सभी व्यक्तियों के लिए खुली होती है। जाति, लिंग, वर्ण अथवा धर्म के आधार पर सदस्यता प्रतिबंधित नहीं होती, परन्तु किसी विशेष संगठन के कर्मचारियों की संख्या के आधार पर सीमित हो सकती है।

प्रथक वैद्यानिक इकाई

एक सहकारी उपक्रम को 'सहकारी अधिनियम 1912' अथवा राज्य सरकार के संबंद्ध सहकारी समिति अधिनियम के अंतर्गत पंजीकरण कराना अनिवार्य है। एक सहकारी समिति का अपने सदस्यों से पृथक वैधानिक अस्तित्व होता है।

वित्तीय स्रोत

सहकारी समिति में पूंजी सभी सदस्यों द्वारा लगाई जाती है। इसके अलावा, पंजीकरण के बाद समिति ऋण ले सकती है। सरकार से अनुदान भी प्राप्त कर सकती है।

सेवा उद्देश्य

एक सहकारी समिति का प्राथमिक उद्देश्य अपने सदस्यों की सेवा करना है, यद्यपि यह अपने लिए उचित लाभ भी अर्जित करती है।

मताधिकार

एक सदस्य को केवल एक मत देने का अधिकार होता है चाहे उसके पास कितने ही अंश हो।

सहकारी समितियों के प्रकार

सहकारी समितियों का वर्गीकरण उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं की प्रकृति के आधार पर किया जा सकता है। सहकारी समितियों के मुख्य प्रकार निम्नलिखित है:

उपभोक्ता सहकारी समितियाँ

उपभोक्ताओं को यह उचित मूल्य पर उप उपभोक्ता वस्तुऐं उपलब्ध करवाती हैं।ये समितियां आम उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए बनाई जाती हैं। ये सीधे उत्पादकों और निर्माताओं से माल खरीद कर वितरण श्रृंखला से मध्यस्थों का उन्मूलन कर देती है। इस प्रकार माल के वितरण की प्रक्रिया में मध्यस्थों का लाभ समाप्त हो जाता है और वस्तु कम मूल्य पर सदस्यों को मिल जाती हैं। कुछ सहकारी समितियों के उदाहरण हैं– केन्द्रीय भंडार, अपना बाजार, सुपर बाजार आदि।

उत्पादक सहकारी समितियाँ

ये समितियां छोटे उत्पादकों और निर्माताओं द्वारा बनाई जाती हैं, जो अपने माल को स्वयं बेच नहीं सकते। समिति सभी सदस्यों से माल इकट्ठा करके उसे बाजार में बेचने का उत्तरदायित्व लेती है। अमूल दुग्ध पदार्थो का वितरण करने वाली गुजरात सहकारी दुग्ध वितरण संघ लिमिटेड ऐसी ही सहकारी विपणन समितियाँ है।

सहकारी वित्तीय समितियाँ

इस प्रकार की समितियों का उद्देश्य सदस्यों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना है। समिति सदस्यों से धन इकट्ठा करके जरूरत के समय उचित ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराती है। ग्राम सेवा सहकारी समिति और शहरी सहकारी बैंक, सहकारी ऋण समिति के उदाहरण हैं।

सहकारी सामूहिक आवास समितियाँ

ये आवास समितियाँ अपने सदस्यों को आवासीय मकान उपलब्ध कराने हेतु बनाई जाती है। ये समितियाँ भूमि क्रय करके मकानों अथवा फ्लेटों का निर्माण करती है तथा उनका आवंटन अपने सदस्यों को करती है।

जैविक कृषि में वर्मी खाद का महत्व और उत्पादन तकनीकी

मूमल भारद्वाज, बबलू गोस्वामी, हर्षवर्धन भारद्वाज एवं एम. सी. जैन
कृषि महाविद्यालय उम्मेदगंज कोटा एवं राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर

भारत में पुराने समय से ही जैविक कृषि ही की जाती थी परंतु जनसंख्या वृद्धि के कारण अनाज की कमी को पूरा करने के लिए हरित क्रांति का आगमन हुआ, जिससे फसल की पैदावार में तो बढ़ोतरी हुई परंतु इससे भूमि की उपज क्षमता पर विपरित असर पड़ा। वातावरण, पेयजल, स्वास्थ्य पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ा। इन सब चीजों को ध्यान में रखते हुए जैविक कृषि को बढ़ावा देने का प्रयास किया जा रहा है। विश्व में 154 देशों में जैविक कृषि को बढ़ावा दिया जा रहा है। कृषि उत्पादन में रसायन रहित पदार्थो, स्वस्थ जलवायु, पौधों व जमीन संरक्षण के लिए केवल जैविक खेती ही एक मात्र विकल्प है। जैविक खेती करने हेतु वर्मी कम्पोस्ट बनाने की प्रक्रिया में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना जरूरी होता है।

मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाता है वर्मीकम्पोस्ट

वर्मीकल्चर

केंचुओं की मदद से कचरे को खाद में परिवर्तित करने के लिए केंचुओं को नियंत्रित वातावरण में पाला जाता है। इस क्रिया को वर्मीकल्चर कहते हैं। केंचुओं द्वारा कचरा खाकर जो कास्ट निकलती है, उसे एकत्रित रूप से वर्मीकम्पोस्ट कहते हैं। केंचुओं का प्रयोग कर व्यावसायिक स्तर पर खेत पर ही कम्पोस्ट बनाया जाता है। इस विधि द्वारा कम्पोस्ट मात्रा 45 दिनों में तैयार हो जाता है। केंचुओं का पालन 'कृमि संवर्धन' या 'वर्मीकल्चर' कहलाता है।

वर्मीकल्चर उत्पादन विधि

वर्मीकल्चर लकड़ी के बॉक्स, प्लास्टिक के क्रेट, प्लास्टिक की बाल्टी अथवा ईंट व सीमेंट के छोटे टैंक में किया जा सकता है। यह एक कम गहरे गड्ढो में भी किया जा सकता है। वर्मीकल्चर के लिये 20 लीटर क्षमता की बाल्टी अथवा 45 सें.मी.×45 सें.मी.×30 सें.मी. का लकड़ी का डिब्बा लिया जा सकता है। वर्मीकल्चर का उत्पादन ऊंचे एवं छायादार जगह में होना चाहिए। इसके लिए उपयुक्त पात्र का चुनाव करने के बाद उसमें छोटे–छोटे छिद्र कर दिये जाते हैं, ताकि उससे अतिरिक्त पानी बाहर निकल जाये। इसके बाद पात्र में वर्मीबैड तैयार किया जाता है। वर्मीबैड में सबसे नीचे वाले परत में छोटे–छोटे पत्थर, ईंट के टुकड़े व मोटी रेत 3.5 सें.मी. की मोटाई तक डाली जाती है, ताकि पानी का वहन ठीक प्रकार से हो। इसके बाद इसमें मिट्टी की एक परत दी जाती है, जो कम से कम 15 सें.मी. मोटाई की होनी चाहिए। इसे अच्छी तरह गीला किया जाता है।

मृदा पोषण का खजाना वर्मीकम्पोस्ट

एपीजेइक और एनेसिक दोनों प्रजातियों के केंचुए एक साथ पाले जाते हैं, तब मिट्टी की परत आवश्यक है। इसके लिये अपने आस–पास के परिसर से एकत्र किये गए लगभग 100 केंचुए मिट्टी की परत में छोड़ दिये जाते हैं। इसके ऊपर ताजे गोबर के छोटे–छोटे लड्डू जैसे बनाकर रख दिये जाते हैं।

अब पूरे बॉक्स को लगभग 10 सेंमी. मोटे सूखे कचरे की तह से ढक दिया जाता है। इस प्रकार बने वर्मीबैड को जूट की थैली के आवरण से ढककर रखा जाता है। 30 दिनों तक वर्मीबैड में नमी रखनी चाहिए। 31वें दिन इसमें थोड़ा–थोड़ा जैविक कचरा समान रूप से फैला सकते हैं। कचरे की तह की मोटाई 5 सें.मी. से अधिक नहीं होनी चाहिए। एक सप्ताह में दो बार कचरा वर्मीबैड पर डाला जा सकता है। 30 दिनों बाद भोजन देना बन्द कर दें और केंचुओं के बॉक्स को ढककर रख दें।

वर्मीबैड बनाना

जमीन पर वर्मीबैड बनाने के लिये सर्वप्रथम सूखी डंठलों एवं कचरे को बैड की लंबाई–चौड़ाई के आकार में बिछा दें। इस पर सब प्रकार के मिश्रित कचरे, जिसमें सूखा कचरा, हरा कचरा, किचन अपशिष्ट, घास, राख इत्यादि मिश्रित हो, उसकी लगभग 4 इंच मोटी परत बिछा दें। इस पर अच्छी तरह पानी देकर गीला कर दें। इसके ऊपर सड़ा हुआ अथवा सूखे गोबर के खाद की 3–4 इंच मोटी परत बिछा दें। इसे भी पानी से गीला कर दें।

कम लागत में वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन

वर्मीकम्पोस्ट पिट

पानी का हल्का छिड़काव

बहुत अधिक पानी डालना आवश्यक नहीं। इस पर 1 वर्गमीटर में 100 की दर से स्थानीय अथवा एक्सोटिक प्रजाति के, जो भी केंचुए उपलब्ध हों, वे छोड़े जा सकते हैं। इसके ऊपर पुनः हरी पत्तियों की 2–3 इंच पतली परत देकर पूरे वर्मीबैड को सूखी घास अथवा टाट की बोरी से ढक दिया जाता है। मुर्गियों अथवा अन्य पक्षियों एवं लाल चींटियों से वर्मीबैड को बचाना आवश्यक है। इस प्रकार वर्मीबैड बनाने के बाद पुनः कचरा डालने की आवश्यकता नहीं है। इस वर्मीबैड से कुछ दूरी पर इसी तरह कचरा एकत्रित करके दूसरा वर्मीबैड तैयार कर सकते हैं। लगभग 40–60 दिनों बाद जब पहली वर्मीबैड से खाद तैयार हो जाती है, तब उसमें पानी देना बन्द कर देते हैं व कल्चर बॉक्स की तरह ही इसमें से धीरे–धीरे ऊपर खाद निकाली जाती है। ताजे निकाले गए वर्मीकम्पोस्ट के ढेर को भी वर्मीबैड के नजदीक ही रखा जाता है व उसमें पानी देना बन्द कर देते हैं।

खाद निकालना

आहार देने के 30–40 दिनों बाद केंचुओं द्वारा पूर्ण जैविक पदार्थ/कचरा काले रंग के दानेदार वर्मीकास्ट में बदल जाता है। वर्मीकम्पोस्ट, वर्मीकास्ट एवं पूर्णतः सड़े हुए कचरे की खाद का मिश्रण होता है। वर्मीकम्पोस्ट बन जाने के बाद केंचुओं के कल्चर बॉक्स में पानी देना बन्द कर दिया जाता है। नमी की कमी की वजह से केंचुए बॉक्स में नीचे की ओर चले जाते हैं। इस समय खाद को ऊपर से निकाल कर अलग से एक पॉलीथीन पर छोटे ढेर के रूप में निकाल लिया जाता है। इस ढेर को भी थोड़ी देर धूप में रखा जाता है, ताकि केंचुए नीचे की ओर चले जाएं। वर्मीकम्पोस्ट में विभिन्न तत्वों की मात्राा वर्मीकम्पोस्ट में साधारण मृदा की तुलना में 5 गुना अधिक नाइट्रोजन, 7 गुना अधिक फॉस्पेफट, 7 गुना अधिक पोटाश, 2 गुना अधिक मैग्नीशियम व कैल्शियम होते हैं। प्रयोगशाला में जांच करने पर विभिन्न पोषक तत्वों की मात्राा इस प्रकार पाई जाती है :– नाइट्रोजन– 1.0–2.25 प्रतिशत, फॉस्फोरस–1.0–1.50 प्रतिशत और पोटाश–2.5–3.00 प्रतिशत।

वर्मीवाश बनाना

यह पत्तियों पर छिड़कने के लिये छिड़काव के रूप में तैयार किया जाता है। वर्मीवाश 10–25 लीटर धारण क्षमता वाली एक प्लास्टिक की बाल्टी अथवा मिट्टी का रंजन/मटका, जिसमें टोटी लगी हो, उसमें बनाया जा सकता है। इसे बनाने के लिये बाल्टी को निम्न प्रकार से भरा जाता है: पहली परत–2''–3'' ईंट व पत्थर, दूसरी परत–2'' रेत, तीसरी परत–6''–9'' मिट्टी व पुराना कम्पोस्ट, चौथी परत–2'' हरी घास, पत्तियां इत्यादि। इस प्रकार बाल्टी भरकर उसमें 100 से 120 केंचुए छोड़ दिये जाते हैं। एक माह बाद इस बाल्टी के ऊपर एक छोटे मटके में पानी भरकर उसमें बारीक–बारीक छेद करके लटका दिया जाता है, जिसमें कपड़े की चिन्दियों के माध्यम से पानी रिसता रहता है। एक माह में केंचुए, जो बाल्टी के ऊपर से नीचे की ओर चालन करते हैं उनमें बारीक रिक्तिकाएं बाल्टी में भरे कम्पोस्ट में बन जाती हैं। ऊपर बंधे मटके में रिसते पानी से रिक्तिकाएं बाल्टी में भरे कम्पोस्ट में आ जाती हैं। ऊपर बंधे मटके से रिसता पानी जब रिक्तिकाओं से गुजरता है, तब उसमें केंचुए के शरीर से मूत्र एवं पसीने के रूप में छूटने वाला कोलाइडल द्रव्य मिल जाता है। इसमें कई उपयोगी वृद्धि (कारक हार्मोन्स एवं पोषक तत्व होते हैं। यह पानी बाल्टी के नीचे लगी टोंटी से 24 घंटे बाद खोलकर एकत्रित कर लिया जाता है, इसे वर्मीवाश कहते हैं।

वर्मीकम्पोस्ट के लाभ

- इसको भूमि में बिखेरने से भूमि भुरभुरी एवं उपजाऊ बनती है। इससे पौधों की जड़ों के लिये उचित वातावरण बनता है, जिससे उनका अच्छा विकास होता है।
- भूमि एक जैविक माध्यम है। इसमें अनेक जीवाणु होते हैं, जो इसको जीवन्त बनाए रखते हैं। इन जीवाणुओं को आहार के रूप में कार्बन की आवश्यकता होती है। वर्मीकम्पोस्ट, मृदा में कार्बनिक पदार्थों की वृदि करता है तथा भूमि में जैविक क्रियाओं को निरंतरता प्रदान करता है।
- वर्मीकम्पोस्ट में आवश्यक पोषक तत्व प्रचुर व सन्तुलित मात्रा में होते हैं, जिससे पौधे सन्तुलित मात्रा में विभिन्न आवश्यक तत्व प्राप्त कर सकते हैं।

किसानो की आय बढाने में बीज भण्डारण का महत्व

कपिल कुमार नागर, उदिति धाकड, एस.एल.यादव एवं प्रताप सिंह
कृषि विश्वविद्यालय,कोटा

किसान भाईयों जिस तरह से वर्षा या ओला वृष्टि ने कटने योग्य खड़ी फसल अथवा कटी हुई फसलों पर अपना विकराल रूप दिखाया है, उससे अनाज भण्डारण की महत्वता और बढ़ गयी है तथा किसानों को और जागरूक होने की जरूरत है। कृषक मित्रों से निवेदन है कि जो अनाज या फसल वर्षा से भीग गयी है, उसे पूर्णरूप से सूखाकर ही भण्डारण करें अन्यथा लाखों उपायों के बावजूद अनाज खराब या सड़ जायेगा। अनाज में अधिक नमी के कारण कीड़ों के साथ विभिन्न प्रकार की फफूंद का आक्रमण हो जायेगा। भण्डारण के समय अनाज में नमी 10 से 15 प्रतिशत से कम हो, इसके लिए उसे मुंह से चबाकर देख लें, कट की आवाज आवे तो समझे अनाज भण्डारण की सही अवस्था है। कुल संग्रहित अनाज का लगभग 10 प्रतिशत भण्डारण के दौरान कीटों एवं फफूंदियों द्वारा खराब हो जाता है, जिससे प्रतिवर्ष देश को 27000 करोड़ रूपये की हानि होती है। भारत वर्ष में कुल उत्पादन का 70 प्रतिशत भाग स्थानीय स्तर पर कृषकों के द्वारा परम्परागत तरीकों से भण्डारित किया जाता है। इन तरीकों ने कच्ची कोठियों में अनाज भण्डारण, बीज को मटकों में राख मिलाकर भण्डारण, प्लास्टिक या जूट की बोरियों में अनाज रखना, नीम की पत्तियाँ, राख तथा बालू मिट्टी को अनाज में रखकर भण्डारित करना। बीज/अनाज को फफूंद या रोगाणुओं से बचाये रखना चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। अतः भण्डारण के दौरान हानि पहुंचाने वाले कीट, फफूंदियों के बारे में जान लेना बहुत आवश्यक है, जिससे किसान उचित समय पर सही कदम उठाकर अनाज को खराब होने से बचा सके। भण्डारगृह में संग्रहित अनाज को दो प्रकार के कारकों से हानि होती है।

1. जीवित कारक: जैसे चूहे, कीड़े (घुन, दालों का ढ़ोरा आदि) तथा फफूंद (एस्परजिलस, फ्यूजेरियम एवं पेनिसिलियम)।

2. अजीवित कारक: बीज की नमी भण्डारगृह का तापमान तथा आर्द्रता। भण्डारण के दौरान अनाज को सर्वाधिक हानि चूहे ही पहुंचाते है। चूहों के अलावा कई तरह के कीट (प्राथमिक एवं द्वितीय) प्रमुख है, जो कि अनाज एवं दालों को खाकर आटा/चूर्ण बना देते हैं एवं बीज की अंकुरण क्षमता नष्ट हो जाती है।

(अ) चूहा : चूहों के प्रभावी नियंत्रण के लिए किसानों को एक सामूहिक अभियान एवं लगभग 8–10 दिन पूर्ण देखरेख करनी पड़ेगी, वरना चूहा एक शंकालु एवं चालाक जीव है, जब कुछ चूहों को मरता देख लेगा तो अपने वंश का विनाश होने के भय से खाना–पीना छोड़ प्रजनन करेगा, क्योंकि चूहे में गर्भावधि लगभग 21 दिन तथा 3 माह की चूहिया में बच्चे देने की क्षमता विकसित हो जाती है। एक बार में 6–7 बच्चे एवं एक वर्ष में 3–4 बार बच्चे देती है, यदि एक नर एवं मादा तथा उसकी संतति निर्बाध रूप से प्रजनन करें तो वर्ष में 800–1000 सदस्यों का पूरा परिवार पैदा कर देती है।

अभियान के तहत रासायनिक नियंत्रण : इसके तहत् सभी किसानों को कम से कम 8 से 10 दिन तक जागरूक होकर अभियान की तरह पूरी चौकसी एवं निगरानी रखनी है ताकि चूहा नियंत्रण में सफलता मिले। हमें तालिका 1 के अनुसार पूरा कार्यक्रम बना लेना चाहिए।

(ब) भण्डारण के प्रमुख कीट

1. प्राथमिक भण्डारण कीट : ये साबुत (पूर्ण) दाने को खराब करते है, जो मुख्य निम्न है:–

- **चावल का घुन :** यह कीट भूरे लाल रंग का करीब 3 मि.मी. लम्बा होता है। इसके सिर का अग्र भाग नुकीला होता है। प्रौढ़ मादा अनाज के दानों में छोटी से गुहा (छेद) बनाती है तथा उसमें अण्डे विसर्जित करती है। इन अण्डों से निकलने वाली इल्लियाँ अन्दर ही अन्दर दानों को खाती है। इस कीट का प्रकोप सर्वप्रथम चावल पर पाया गया था, परन्तु भण्डारण में गेहूँ एवं मक्का के लिए भी एक समस्या बन गया है।
- **खपरा भृंग (पई):** इस कीट की छोटी अण्डाकार पीले भूरे या काले रंग की मादा एक बार में 125 अण्डे देती है, जिनसे रोयेदार सुन्डिया निकलती है, जो कि बिना खाये–पीये महीने भर जिन्दा रह सकती है। इस कारण इसे नियंत्रण करना मुश्किल होता है।
- **दालों का ढोरा (पल्स वीटल) :** यह छोटा एवं चौकोर आकृति के साथ–साथ अपने मुखांगों के अग्र भाग, जो कि थोथरा होता है, से जल्दी पहचाना जा सकता है। ये कीट दानों को खाकर सीधा नुकसान तो करते ही है, साथ ही अपनी जीवन क्रियाओं से भण्डारण की नई व तापमान बढ़ाते है, जो अनाज पर फफूंद का आक्रमण बढ़ाने में सहायक होते है।
- **लेसर ग्रेन बोरर (अनाज छेदक) :** इनकी लट व व्यस्क दोनों गेहूँ, मक्का और चावल के दानों को हानि पहुंचाती है। यह भूरा, काला होता है। व्यस्क उड़ भी सकता है।

2. द्वितीयक भण्डारण कीट : ये कीड़े क्षतिग्रस्त दानों एवं आटे को खराब करते हैं।

- **अनाज घुन (आटे का कीट) :** इस कीट की सुण्डी (ग्रब) एवं प्रौढ़ दोनों अवस्थाएँ अनाज को हानि पहुंचाती है, इनके प्रौढ़ गहरे भूरे या काले रंग तथा 3 मि.मी. लम्बे होते हैं।
- **चावल का पतंगा :** यह चावल व अन्य खाद्यान्न को हानि पहुंचाता है। लट (ग्रब) ही नुकसान पहुंचाती है।

तालिका 1 : चूहा नियंत्रण हेतु जागरूक अभियान कार्यक्रम योजना

क्र.सं.	दिन	कार्य योजना	टिप्पणी
1.	प्रथम दिन	सभी बिलों को बन्द कर दें। बिलों के आसपास खरपतवार उनके शरण स्थल हटा देवें।	ताकि चूहों को खाने का अन्य कुछ न मिले।
2.	दूसरे एवं तीसरे दिन	आबाद (खुले) बिलों को पहचानना तथा संख्या का अनुमान लगाना ताकि चुग्गे में जहर की मात्रा व मानव श्रम का आंकलन किया जा सके। विषहीन चुग्गा (10 ग्राम प्रति बिल) शाम के समय डाले। इसे हाथ से मिलाकर गोलियां बना लें ताकि चूहों को बेहिचक खाने की आदत पड़ जाये।	विषहीन चुग्गा (1 किलो) – 960 ग्राम आटा (मक्का बेहतर) + 20 ग्राम तेल (मीठा, सरसों) + 20 ग्राम गुड़ा
3.	चौथे दिन	विषैला चुग्गा – हाथ में दस्ताने पहने, इसे हाथ से नहीं बनावें, लकड़ी से जहर मिलायें।(10 ग्राम प्रति बिल) शाम के समय डालें।	विषैला चुग्गा (1 किलो) – 940 ग्राम आटा + जहर (जिंक फॉस्फाईड) 20 ग्राम + तेल 20 ग्राम + 20 ग्राम गुड़।
4.	पांचवे तथा छठे दिन	मरे हुए चूहों को एकत्र करना।	इन्हें ज़मीन में गाड़ देना चाहिए ताकि अन्य जानवर नही खा पायें।
5.	सातवे दिन	खुले बिलों (आबाद बिलों) को पुनः बंद कर देवें।	लगभग 80–90 प्रतिशत चूहे तो मर जायेंगे पर शेष की शंका न हो इसलिए एक बार पुनः दवाई रखनी है।
6.	आठवे दिन	आंतचन रोधी चूहा नाशक दवा का प्रयोग करें। इसके लिए ब्रोमोडिलियोन जो कि सुपरवारफेरिन के नाम से उपलब्ध है।	शाम के समय इस दवा के केक को चूहों के आने जाने के रास्ते का पता लगाकर डालना चाहिए। इससे विष शंकालुता नहीं होगी एवं शेष सभी 2 से 3 दिन में मर जायेंगे।
7.	नवें दिन	एल्यूमिनियम फॉस्फाईड की एक गोली प्रति बिल में डालें जो बिल खुले हों।	आकाश साफ होना चाहिए।
8.	दसवें दिन	सभी बिलों को बन्द कर देवें।	सफलता की कहानी अपने आप बयां होती है।

- **मक्का की सुरसुरी :** सुण्डी ही सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाती है, जो कि टूटे दानों व आटे पर नुकसान पहुंचाती है।

नियंत्रण विधियाँ

(अ) भण्डारण से पूर्व

1. फसल की कटाई शुष्क मौसम में पूरी तरह फसल पक जाने के बाद ही करें।
2. अनाज को भलीभांति साफ कर लें, इसमें से कचरा, टूटे या क्षतिग्रस्त/कीटग्रस्त दाने निकाल देने चाहिए।
3. अनाज जो भण्डार कर रहे हैं, उसे सूखा लें, उसमें नमी 10 से 12 प्रतिशत से कम रहे (मुंह से चबाकर देख लें, कट की आवाज आवें)
4. भण्डार गृह में रखी कोठियों, दीवारों, छत, फर्श और कोनों को अच्छी तरह साफ कर लें। दरारें हो तो सीमेन्ट या मिट्टी से बन्द कर देवें। दीवारों पर 120–150 से.मी. ऊँचाई तक तारकोल पोत देना ठीक रहता है। गोदाम या भण्डार पात्रों को मेलाथियॉन 50 ई. सी. को 10 मि.ली./लीटर के हिसाब से छिड़काव करें या भण्डार गृह को 10–12 किलोग्राम प्रति 1000 घनफुट के हिसाब से ई. डी.सी.टी. मिश्रण से प्रद्यूमन करें, जिससे छिपे हुए कीट व अण्डे नष्ट हो जावें।
5. जहाँ तक सम्भव हो नई बोरियों को काम में लेना चाहिए, यदि पुरानी बोरियां काम में ले रहे हो तो उन्हें 15–20 मिनट उबलते पानी में रखे या कम से कम 6 घण्टे धूप में रखनी चाहिये या मेलाथियॉन के 1 प्रतिशत घोल में 10–15 मिनट तक भिगोकर छाया में सुखाकर नया अनाज भरने के काम में लें या पुराने बोरों को उपयोग में लेना है तो ई.डी.सी.टी. मिश्रण 15 किलोग्राम प्रति 1500 बोरों के हिसाब से उपचारित करें।
6. अनाज को खलियान से भण्डार गृह तक ढ़ोने में प्रयुक्त गाड़ी साफ सुथरी होनी चाहिए।
7. अनाज भण्डारण के लिए परम्परागत भण्डारण पात्रों के बजाय धातु निर्मित कोठियों को लेवें।
8. यदि अनाज को बीज हेतु रखना है तो अनाज को पॉलिथीन की शीट पर फैलाकर मेलाथियॉन 5 प्रतिशत चूर्ण की 250 ग्राम मात्रा प्रति क्विंटल बीज में अच्छी तरह मिलाकर भण्डारित करें।
9. दालों में भृंग के लिए भण्डार पात्रों के ऊपर 7 से.मी मोटी राख या

बारीक छनी हुई मिट्टी की परत लगाये।

10. पक्षियों से सुरक्षा हेतु भण्डार गृहों के रोशनदानों में 25X50 मि.मी. आकार की लोहे की जाली लगानी चाहिए, जिससे पक्षी अन्दर न जा सके। चूहे अन्दर न जा सके, इसके लिए भण्डार गृह के दरवाजों के नीचे चौड़ी धातु की पट्टी लगावें।

(ब) भण्डार के समय

1. भण्डार गृह की दीवार एवं बोरों के ढ़ेर अथवा दो बोरों के ढ़ेरों के बीच में, निरीक्षण तथा भण्डारण में हवा के संचार हेतु कम से कम 30 से.मी. का अन्तर रखना चाहिए। बोरियों को सीधे फर्श पर न रखकर उन्हें लकड़ी के पट्टों पर रखें, ताकि नमी/सीलन अनाज तक न पहुंच सके।
2. जहाँ तक सम्भव हो भण्डार गृह से एक ही प्रकार का अनाज भण्डार करें। साथ ही पुराने अनाज के साथ नया अनाज न मिलावें।
3. बोरियों के ढ़ेर की ऊपरी सतह तथा छत के बीच कम से कम 60 से.मी. का अन्तर अवश्य रखना चाहिए।
4. बोरियों के ढ़ेर का आकार 6X6 मीटर से अधिक न हो।
5. भण्डार गृह को शुष्क एवं ठण्डा रखना चाहिए, जिससे कीड़ें एवं फफूंदी का प्रकोप कम होता है।
6. यदि भण्डार गृह में या गोदाम में कीड़े उड़ते हुए पाये जाये तो भण्डार गृह का प्रद्यूमन एल्यूमिनियम फॉस्फाईड (7 टिकिया प्रति 1000 घन फुट) से करना चाहिए।
7. एक क्विंटल अनाज को 1 किलो निंबोली के पाउडर के साथ मिलाकर भण्डारण किया जा सकता है। भण्डार एवं बीज का निरीक्षण नियमित रूप से करना चाहिए। पशुओं का आहार, दाना, तेल एवं दवाईयों आदि का बीज के साथ भण्डारण न करें।
9. भण्डारण में धातु निर्मित कोठिया काम में लेवें।
10. अन्य परम्परागत तरीकों में नीम की पत्तियाँ, माचिस की तिलियाँ, सरसों या अरण्डी के तेल से चूपड़कर, बोरिक पाउडर, लौंग, भूने हुए मेथी दाना पाउडर, आदि अनाज, दालों एवं चावल में रखकर भण्डारण किया जा सकता है।

फन्दा (कीट ट्रेप) : इसे तमिलनाडू कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित किया गया है, जो कि कीटों को एकत्र करता है। यह एक कीपनुमा उपकरण होता है, जो कि कोठी में रखे अनाज (आटा, दाल, चावल) के लिए उपयुक्त है, जब हमें कोठी में 50 किलो तक अनाज भण्डारण करना है। एक फन्दा (कीट ट्रेप) की कीमत लगभग 45 रूपये है। प्रयोग के लिए चित्रानुसार दिखाये गये सफेद कोन वाले भाग नीचे होना चाहिए तथा इसे खड़ा रखते है। छेद में हवा के कारण कीड़ें उसके अन्दर घूस जाते है, जो कि नीचे सफेद कोन में इकट्ठे हो जाते हैं, जो कि पुनः बाहर नहीं निकल पाते है। इस सफेद कोन को खोलकर सप्ताहभर बाद खाली कर पुनः लगा देना चाहिए। उपरोक्त सावधानियों के बावजूद भी यदि भण्डारित अनाज में कीटों का प्रकोप हो तो नियंत्रण हेतु रासायनिक दवाओं का प्रयोग करें।

एल्यूमिनियम फॉस्फाईड (सेलफॉस) : इसकी 3 ग्राम की टिकिया बाजार में उपलब्ध है। उन्हें 3 टिकिया (9 ग्राम) प्रति टन (10 क्विंटल) या 7 टिकिया (21 ग्राम) को 1000 घन फुट (28 घन मीटर) क्षेत्र की दर से प्रयोग करें। अनाज यदि धातु की कोठियों में हो तो टिकियों को कपड़ों में बांधकर कोठियों में डालकर वायु रोधी कर देना चाहिए। अनाज यदि बोरियों में रखा हो तो इन्हें त्रिपाल या पॉलिथीन की चादर से ढ़क कर प्रद्यूमित करना चाहिये ताकि जहरीली गैस बाहर नहीं आ सके। प्रद्यूमन के सात दिन पश्चात् त्रिपाल या चादर हटा देनी चाहिए।

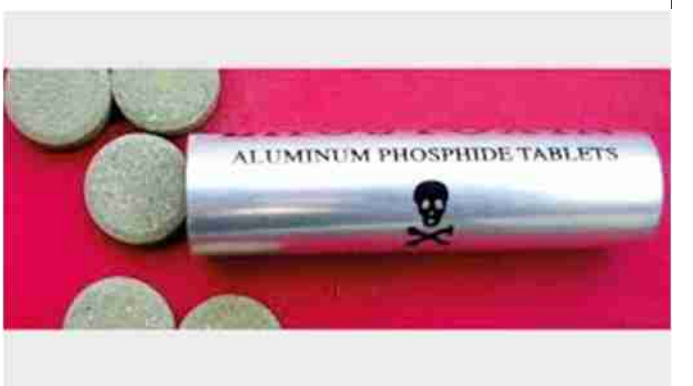

ई.डी.बी. एम्पूल इन्जेक्शन (इथाइलीन डाइब्रोमाइड) : यह सूती कपड़े में लिपटा कांच का केप्सूल या इन्जेक्शन होता है, जिसे सण्डासी से अनाज कोठी के मध्य तोड़कर कोठी को 7 दिन तक वायु रोधी (बन्द) कर देना चाहिए। अनाज को उपयोग में लेने से पहले हवा में खुला रखना चाहिये ताकि गंध खत्म हो जावे तब पिसाई करावें। इसे 1 इन्जेक्शन (ई.डी.बी. एम्पूल – 3 मि.ली.) को प्रति क्विंटल के हिसाब से प्रयोग में लेना चाहिए। ध्यान रहे ई.डी.बी. एम्पूल से आटा, नमी युक्त दानों एवं तिलहनी फसलों को धूम्रित नहीं करना चाहिए। यह एम्पूल 3, 5, एवं 10 मि.ली. के पैक में आता है। ई.डी.बी. से कीड़ों के साथ–साथ उनके अण्डे भी मर जाते हैं। वाष्प दबाव कम होने के कारण इसका प्रयोग उन भण्डारों या पात्रों में भी किया जा सकता है, जो पूर्णतः हवा बन्द नहीं होते हैं। यह एक तरल होता है, जो कि हवा के सम्पर्क में आने पर गैस में बदल जाता है। यह ज्वलनशील नहीं होती है और हवा से लगभग 6 गुना भारी होती है।

फसलों की कटाई उपरान्त प्रबंधन से किसान बढ़ा सकते है अपनी कृषि आय

गिरधारी लाल मीना, के. सी. मीना एवं नारायण लाल मीना
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपर एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, अन्ता, बारां

भारत दुनिया में एक अग्रणी खाद्य उत्पादक देश है। खाद्य उत्पादन के उच्च स्तर के बावजूद, वर्ष 2020 वैश्विक भूख सूचकांक में 107 देशों में से भारत 94वें स्थान पर है वर्ष 2014 में भारत में फसल के बाद का अनुमानित आर्थिक नुकसान 926.51 अरब रुपये था। देश की जीडीपी का 0.6 फीसदी और वित्तीय वर्ष 2014 में यह कृषि मंत्रालय और किसान कल्याण के बजट से ढाई गुना ज्यादा था। कोविड महामारी इस तथ्य को रेखांकित करती है कि खाद्य असुरक्षा भारत में सबसे बड़ी बाधा बनी हुई है। भोजन के लिए खाद्य के नुकसान और बर्बादी के लिए तत्काल कार्यवाही की महत्ती आवश्यकता है। विश्व स्तर पर, खाद्य हानि और बर्बादी को खाद्य सुरक्षा, अर्थव्यवस्था और पर्यावरण के लिए एक गंभीर खतरे के रूप में देखा जाता है। भारत में खाद्य हानि और बर्बादी को कम करने की दिशा में मौजूदा ज्ञान, अभ्यास और नीतियों को समझना बहुत महत्वपूर्ण है।

आज देश में कृषि उत्पादन या उपज की समस्या से ज्यादा फसल की कटाई के बाद उसके प्रबंधन की है। कटाई के बाद फसलों की बरबादी से देश के उपभोक्ता न केवल मूल्यवान कृषि उपज से वंचित रह जाते है, बल्कि इसे उपजाने में इस्तेमाल होने वाले सीमित संसाधन जैसे–खाद, बीज, पानी, मशीनरी, कीटनाशक, बिजली, नकद खर्च और किसान की मेहनत भी बेकार हो जाती हैं। खाद्य की बरबादी किसान के खेत से शुरू होती है और उपभोक्ताओं के पास पहुंचने तक जारी रहती है, जिसे आमतौर पर फसल की कटाई के बाद की बरबादी कहा जाता है। हालांकि खाद्य की बरबादी यही खत्म नहीं होती है। बड़ी मात्रा में खाद्य पकाए जाने के बाद भी उपभोक्ताओं के स्तर पर बरबाद होते है। कृषि में फसल उत्पादन के पश्चात, कटाई उपरान्त प्रबंधन का चरण आता है, जिसमें गहाई, छिलका उतारना, सुखाना, सफाई, छंटाई, पैकिंग, शीतलन, और भंडारण आदि शामिल है। जब एक फसल जमीन से हटा दी जाती है, या अपने मूल पौधे से अलग कर दी जाती है, तो यह खराब होने लगती है। कृषि उत्पाद, उत्पादन के बाद, अन्तिम उपभोक्ताओं तक पहुंचने से पहले, रख–रखाव के विभिन्न चरणों और भंडारण की एक श्रृंखला से गुजरते हैं। कटाई के बाद प्रत्येक चरण में कुछ नुकसान होते हैं जो मूल्य वितरण प्रणाली को काफी हद तक प्रभावित करते है तथा किसी उत्पाद के उपभोक्ताओं और किसानों के बीच कीमतों के अंतर को निर्धारित करते हैं। इसे मात्रात्मक (वजन या मात्रा में कमी) और गुणात्मक (भोजन की विशेषताओं में अवांछित परिवर्तन और कम पोषक तत्व मूल्य) रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो आपूर्ति श्रृंखला में खाद्य की कटाई के समय से लेकर फसल के अंत उपयोग समय तक होता है।

अनाज, फल, सब्जियां, मछली और पशुधन उत्पाद जैसे 45 महत्त्वपूर्ण खाद्य उत्पादों के उत्पादन के बाद नुकसान को लेकर पूरे देश में एक सर्वेक्षण किया गया है। यह सर्वेक्षण कटाई के बाद की इंजीनियरिंग एवं तकनीक पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना के तहत किया गया है। इसमें कहा गया है कि हर साल देश में करीब 6.5 करोड़ टन खाद्य पदार्थ बरबाद होते हैं, जिनकी कीमत वर्ष 2014 की कीमतों पर करीब 92,651 करोड़ रुपये है। सबसे ज्यादा बरबादी सब्जियों और फलों में होती है, जो कुल उत्पादन का 15.88 फीसदी तक होता है। खेतों में खाद्य की बरबादी की मुख्य वजह कटाई के पुराने तरीके और उपज का कुप्रबंधन है। 'कृषि जिंस नवजात बच्चे की तरह होती हैं, जिनकी मृत्यु में कमी लाने के लिए अच्छी देखभाल की जरूरत होती है।

वर्ष 2016 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा किए गए फसल नुकसान के आकलन से पता चला है कि लगभग 3.9 से 6 प्रतिशत अनाज में, 4.3 से 6.1 प्रतिशत दालों में, 2.8 से 10.1 प्रतिशत तिलहनों में, 5.8 से 18.1 प्रतिशत फलों में, और 6.9 से 13 प्रतिशत सब्जियों में नुकसान, कटाई के बाद की गतिविधियों, रख–रखाव और भंडारण के दौरान होता है। दूसरी ओर किसानों की आय दोगुनी करने संबंधी समिति (2019) के अनुमानों के अनुसार, अखिल भारतीय स्तर पर, किसान बाजार में उत्पादित कुल फलों और सब्जियों का लगभग 40 प्रतिशत उत्पाद को बेचने में असमर्थ रहते हैं। विपणन और निरीक्षण निदेशालय, भारत सरकार ने 25 राज्यों, 100 जिलों और 15000 परिवारों को शामिल करते हुए खाद्यान्न फसलों की कटाई के बाद के होने वाले नुकसान के लिए कुल 12 फसलो की कटाई, सफाई, परिवहन व भंडारण सम्बन्धी गतिविधियों को ध्यान में रखकर एक सर्वेक्षण आयोजित किया गया जिसका विवरण तालिका 1 में दिया गया है।

तालिका 1 : फसल कटाई के बाद के विभिन्न चरणों में अनाज के नुकसान का अनुमान (प्रतिशत)

फसलें	संचालित गतिविधियाँ					
	तोड़ना	सफाई	परिवहन (खेत से खलिहान तक)	परिवहन (खलिहान से संग्रहण तक)	भण्डारण	कुल
धान	0.89	0.48	0.79	0.16	0.40	2.72
गेंहूं	0.73	0.28	0.49	0.13	0.16	1.79
बाजरा	0.62	0.32	0.54	0.19	0.22	1.89
ज्वार	0.65	0.32	0.68	0.21	0.34	2.20

मक्का	0.80	0.53	0.58	0.19	0.35	2.45
जौ	0.70	0.27	0.57	0.28	0.34	2.16
रागी	0.77	0.76	0.62	1.13	0.53	3.81
अरहर	0.61	0.43	0.58	0.23	0.35	2.20
चना	0.77	0.78	0.81	0.82	0.56	3.74
मूग	0.63	0.61	0.67	0.19	0.29	2.38
उड़द	0.65	0.62	0.70	019	0.30	2.46
मसूर	2.21	1.01	2.20	1.08	0.64	7.14

खाद्यान्नों की कटाई के बाद के खाद्य विभिन्न कृषि कार्यो की गतिविधियों से होते हुए उपभोक्ताओं के पास पहुंचते है। भंडारण, देखभाल और परिवहन के विभिन्न कार्यो के दौरान कुछ खाद्य हानि और बर्बादी होती है। फसलों की कटाई उपरान्त प्रबंधन के दौरान इन विभिन्न कार्यो की गतिविधियों को तालिका 2 में बताया गया है।

फसल की बरबादी में कमी लाने के लिए भंडारण, परिवहन, विपणन एवं प्रसंस्करण जैसी उत्पादन के बाद की मूल्य श्रृंखला के विस्तार की बात कही जाती है, इसी क्रम में भारत सरकार द्वारा कृषि अवसंरचना कोष' के तहत एक लाख करोड़ रुपये की वित्तपोषण सुविधा का प्रावधान रखा गया है। जो फसल की कटाई के बाद उसके प्रबंधन की समस्या को हल करने में मददगार साबित होगा। इस कोष के तहत 'कटाई बाद फसल प्रबंधन अवसंरचना' और 'सामुदायिक कृषि परिसंपत्तियों' जैसे कि कोल्ड स्टोरेज और चेन, संग्रह केंद्रों, प्रसंस्करण इकाइयाँ, वेयरहाउसिंग, ग्रेडिंग और पैकेजिंग इकाइयों, ई–ट्रेडिंग प्लेटफॉर्म की स्थापना के लिए धन उपलब्ध कराया जा रहा है। इन परिसंपत्तियों की बदौलत किसान अपनी उपज का भंडारण करने एवं ऊंचे मूल्यों पर बिक्री करने, बर्बादी को कम करने, और प्रसंस्करण एवं अधिक मूल्यवर्धन कर सकते है। ये सुविधायें किसानों को अपनी उपज का अधिक मूल्य प्राप्त करने में सक्षम करेंगी। उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कृषि उत्पाद, उत्पादन के बाद, किसानों से अन्तिम उपभोक्ताओं तक पहुंचने से पहले, भंडारण, परिवहन, विपणन एवं प्रसंस्करण के विभिन्न चरणों और श्रृंखलाओं से गुजरते हैं। प्रत्येक चरण में कृषि उत्पादों का कुछ प्रसंस्करण होता हैं। अतः हमारे किसानों, उत्पादकों खाद्य निर्माताओं, प्रसंस्करणकर्ताओं और उपभोक्ताओं को इन नुकसानों के प्रति अधिक सजग एवं जागरुक रहने की जरुरत है। इन नुकसानों में कमी लाकर के अधिक आय प्राप्त कर सकते है।

तालिका 2: विभिन्न कृषि कार्यो की गतिविधियों की सीमाएं व दायरे

कार्य	कार्यो की सीमा
फसलों की कटाई	खड़ी फसल की कटाई, पेड़–पौधे से फलों/गुच्छों को तोड़ना, कंदों को मिट्टी से खोदना/उखाड़ना, जुताई के बाद बची हुई कंदों को इकट्ठा करना, फलियों को पौधे से अलग करना, जुताई से पहले बची हुई फलियों को इकट्ठा करना
संग्रहण	बांधना (स्टैकिंग), हैंडलिंग और थ्रेसिंग फ्लोर तक परिवहन, टोकरी या बैग में भरना, ग्रेडिंग क्षेत्र तक परिवहन
ताड़ना (थ्रेसिंग)	फसल से दानों को हाथ से अलग करना या थ्रेशर का उपयोग करके और पुआल व अनाज का संग्रहण करना
छँटाई / ग्रेडिंग	नुकसान, चोट, कच्ची फसल के कारण मानव उपभोग के लिए अनुपयुक्त सामग्री को अलग करना
विनोइंग / सफाई	थ्रेस्ड सामग्री का संग्रह, भूसी, धूल आदि को हटाना, कपास की ओटाई करना
सुखाना	सफाई के बाद सामग्री का संग्रह, सुखाने के लिए फैलाना, सूखने के बाद ढेर करना, पेराई शुरू होने से पहले खेत से पेराई इकाई तक परिवहन
पैकेजिंग	विनोइंग/सफाई/सुखाने के बाद संग्रह/ग्रेडिंग/थ्रेसिंग (ब्लोअर वाले थ्रेसर द्वारा), बैग/टोकरियाँ/अन्य सामग्री में भरने के बाद पैकेजिंग, ओटाई के बाद बीज को बैग में पैक करना
परिवहन	थ्रेसिंग यार्ड में पैक सामग्री का लदान करना, किसान के भण्डार प्रांगण तक परिवहन, भंडारण के लिए उतराई, भण्डार से मंडी प्रांगण तक परिवहन, मंडी प्रांगण में उतराई, प्रारंभिक ग्रेडिंग स्थान में पैक सामग्री का लदान करना, छँटाई स्थल/भंडार से मंडी प्रांगण तक परिवहन, मंडी प्रांगण में उतराई, सुखाने वाले स्थान में पैक सामग्री का लदान करना, भंडारण के लिए उतराई, कटाई के बाद एकत्रित सामग्री का लदान करना, प्रोसेसिंग यूनिट तक परिवहन
प्रसंस्करण	प्रसंस्करण कृषि उपज का अधिक उपभोज्य रूप में रूपांतरण है। उदारहण, गेहूँ को आटे में बदलना, दूध से घी व मक्खन बनाना, धान की भूसी से चावल बनाना आदि।
भंडारण	बाजार में बिक्री के लिए भेजने या स्वयं के उपभोग से पहले, छंटाई/ग्रेडिंग, बिक्री/निपटान के लिए लदान और उतराई, ग्रेडिंग/छँटाई के दौरान उतराई और लदान, भंडारण के दौरान सामग्री की उतराई और लदान फसल उपज का भंडारण किसान के घरेलू स्तर/गोदाम/कोल्ड स्टोर/थोक स्तर/खुदरा स्तर/प्रसंस्करण इकाइयों के स्तर पर किया जा सकता है।

किसान अपनी उत्पादन लागत कैसे कम करे

सुनील कुमार, पूनम कश्यप, पीयूश पूनिया एवं अमृतलाल मीणा
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मरेठ–250110

गांवो में आज भी कृषि ही आजीविका का मुख्य साधन है। लगातार हो रहे अनुसंधानो और नई किस्मों के आने से कृषि के स्तर में विकास हुआ है। लेकिन अब किसानों को खाद, बीज, दवाइयों, कृषि औजारो, पानी, बिजली आदि पर अधिक खर्च करना पड रहा है। खेती आज किसान के लिए घाटे का सौदा होती जा रही है। भारत में कृषि पर सब्सिडी 10 प्रतिशत से भी कम है। अमेरिका व अन्य देशों में कृषि सब्सिडी भारत की अपेक्षा ज्यादा है। वहां उन्नत तकनीक के कारण उत्पाद लागत भी कम आती है। यही कारण है विदेशी वस्तुएं भारतीय वस्तुओं की अपेक्षा काफी सस्ती होती हैं। अप्रैल 2005 से विश्व व्यापार संगठन की संधि की शुरूवात हुई जो आज पूरी तरह से लागू होने से पूरे विश्व की कृषि एक बडी मंडी का रूप धारण कर चूकी है। ऐसी स्थिति में किसानों के लिए जरूरी है कि वे अंतर्राष्ट्रीय कृषि प्रतिस्पर्धा में कम लागत से अधिक उत्पादन लेकर उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार करें। जिससे विश्व बाजार में अच्छा मूल्य मिल सके और देश की भी साख बने। किसान उपयोगी विधियां अपनाकर कम लागत में अधिक उपज ग्रहण कर सकते है।

मिट्टी की जांच कराए : खेती करने से पहले खेत की मिट्टी की प्रयोगशाला से जांच करवाएं। आकड़ों के आधार पर फसलों का चुनाव करें। मिट्टी में मौजुद पौषक तत्वों की आवश्यकता के आधार पर खाद व पोषक तत्वों की आवश्यकता के आधार पर खाद व पोषक तत्व डालें। सही जानकारी होने से खाद खर्च कम व मिट्टी में सुधार होगा।

प्रमाणित बीजों का प्रयोग : बीजों की पारम्परिक विधि को छोड़कर किसान प्रमाणित व गुणवत्तर वाले बीजों का प्रयोग करें। बीज को 2–3 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार कर लें। इससें कई बीमारियों से छुटकारा मिलता है। नर्सरी डालने से पहले नर्सरी का उपचार अवश्य कर लें। ज्यादातर बीमारियां और कीडे नर्सरी से फैलते हैं। नर्सरी लगाते समय यह ध्यान रखें कि बीज में किसी प्रकार का रोग न हों और उपचारित करके ही पौधों की रोपाई करें।

उचित समय पर बिजाई : किसी भी फसल की सही समय पर बिजाई अति आवश्यक है। यदि किसी कारण से बिजाई में देरी हो जाए तो फसल उत्पादन पर खर्चा तो उतना ही आता है लेकिन पैदावार जरूर कम हो जाती है। गेंहू की देरी से बिजाई करने पर 4 किलोग्राम प्रतिदिन प्रति बीघा की दर से पैदावार में कमी आती है। अगेती और पछेती किस्मों का भी ध्यान रखना चाहिए। वर्शा न होने पर यदि बिजाई में देरी हो जाए तो पछेती किस्मे लगाकर पूरा लाभ लिया जा सकता है।

पौधों की उचित संख्या : खेत में प्रति बीघा पौधों की संख्या का उपज पर सीधा असर पड़ता है। बीज की उचित मात्रा और सही गहराई पर बीजने से उपज में बढ़ोत्तरी होती है। छिटकवां विधि से बिजाई न करके, लाइनों में बिजाई करनी चाहिए। इससे खरपतवार निकालने में आसानी रहती है। यदि पौधों की संख्या अधिक हो तो उनकी छंटाई करके अधिक उपज ली जा सकती है।

सहयोगी फसलें उगाएं : एक ही खेत में एक से अधिक फसलें उगाना कृषि की पुरानी परम्परा है जैसे गेंहू–चना इकट्ठा उगाना। मुख्य फसल की दो पंक्तियों के बीच में जल्दी पकने और बढ़ने वाली दलहनी फसलें बोई जा सकती है स्तम्भकार औषधीय पौधे जेट्रोफा के नीचे बेल वाली जैसे करेला व खीरा आदि फसलें लगा सकते है। छाया की आवश्यकता वाली फसलें अदरक, सफेद मूसली, अश्वगंधा हल्दी आदि लगाकर अधिकतम भूमि का प्रयोग करके उत्पाद की गुणवत्ता के साथ–साथ शुद्ध लाभ बढाया जा सकता है। किसी कारणवश एक फसल खराब भी हो जाए तो उसके नुकसान की भरपाई दूसरी फसल से जाती हैं।

फसल–चक्र में दलहनी फसलें : फसल चक्र में दाल वाली फसलें शामिल करने से प्रति बीघा 2.5 से 3.0 कि.ग्रा. नाईट्रोजन खाद की वृद्धि के साथ–साथ भूमि की उपजाऊ शक्ति भी बढ़ती है।

संतुलित मात्रा में खाद का प्रयोग : प्रायः किसान जरूरत से अधिक खाद डालते हैं। इससे पैसे का नुकसान तो होता ही है फसल पर कीडों, बीमारियों का प्रकोप भी बढ़ जाता है। अधिकतर कृषक सही जानकारी के अभाव में नाईट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश का संतुलित प्रयोग न करके एक ही खाद डाल देते है। वैज्ञानिकों की सिफारिश के अनुसार खाद डालने के समय, मात्रा और विधि का हमेशा ध्यान रखना चाहिए। बिजाई से पहले बीज को खाद के टीके लगाकर नाईट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश प्रयोग किया जा सकता है। कॉपर, लोहा, जिंक तथा मैगनीज जैसे सूक्ष्म तत्वों का आवश्यकता अनुसार प्रयोग करें इससे बीमारी और कीड़े कम लगतें है। इससे कम खर्च में अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।

कम्पोस्ट, गोबर और हरी खाद को प्रयोग : खेतों में घास–पात के अवशेषों से कम्पोस्ट तैयार की जा सकती है। गौबर की खाद में 0.5 प्रतिशत नाईट्रोजन, 0.25 प्रतिशत फास्फोरस और 0.5 प्रतिशत पोटाश मात्रा होती है। साथ ही भूमि की भौतिक दशा में भी सुधार होता है। वर्ष में एक बार हरी खाद का प्रयोग करने से आगामी फसल में एक तीहाई खाद कम डालनी पड़ती है। गेहूं की कटाई के बाद अप्रैल में 2–3 किलोग्राम प्रति बीघा ढैंचा बोयें और 40–45 दिन बाद उसकी जुताई करके अगली फसल लगाएं। किसानों को कार्बनिक खेती पर जोर देना चाहिए। वर्मी कम्पोस्ट और नीम या मूंगफली आदि की खली के प्रयोग से मिट्टी में जीवाणुओं की वृद्धि होती है। प्राकृतिक पदार्थ में गौमुत्र, नीम, आक, धतूरा और तम्बाकू का प्रयोग करें। कीड़ो, बीमारियों का समन्वित प्रबंन्धन रासायनिक दवाओं से करने पर उत्पाद का दाम कम मिलता है। अतः कार्बेनिक दवाओ का ही प्रयोग करें। कीडों और बीमारीयों की रोकथाम के लिए कर्षण क्रियाओ, भौतिक और जैविक विधियों का अधिकतम प्रयोग करना चाहिए। गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें और प्रतिरोधी प्रजातियां ही लगाएं। जीवाणुओं तथा प्राकृतिक भक्षक कीटों को प्रयोग करें। ट्रैप का प्रयोग करके कीड़ों को एकत्रित करके नश्ट किया जा सकता है।

पानी का उचित प्रयोग : वर्षा के पानी को इकट्ठा करके किसान सिंचाई के लिए प्रयोग कर सकते हैं। गहरी जुताई और मेढबन्दी से खेत में पानी रोका जा सकता है। कम पानी चाहने वाली किस्मों को बढावा देना चाहिए। वर्षा के पानी को इकट्ठा न कर पाने के अभाव में 50–60 प्रतिशत सिंचाई का पानी बेकार चला जाता है। इससे भूमि बंजर, जलमग्न, लवणीय और खेती के अयोग्य हो जाती है। आधुनिक सिंचाई के तरीकों में फव्वारा और ड्रिप सिंचाई का फसल और जमीन के अनुरूप इस्तेमाल करना चाहिए।

फसल विविधीकरण और समन्वित कृषि प्रणाली : परम्परागत फसलों से जहां कम आमदनी होती है। वहीं सब्जी, फलों, मसालों औषधीय और सुगन्धित फसलों की खेती करके अधिक आय अर्जित की जा सकती है। खेती के अतिरिक्त अन्य कार्य जैसे डेयरी, पिगरी, पोल्ट्री, मधुमक्खी पालन, रेशम कीट पालन, मछलीपालन, खुम्बी उत्पादन एक दूसरे के पूरक है। इनसे अतिरिक्त आमदनी होगी, उत्पादन लागत में कमी होगी और इसके अवशेष खाद के रूप में प्रयोग किये जो सकतें हैं।

वेस्ट डीकम्पोजर : घटेगी कृषि लागत एवं बढ़ेगी पैदावार

सुभाष असवाल, के.सी. मीना एवं सुनिल कुमार
कृषि विज्ञान केन्द्र, अन्ता एवं कृषि महाविद्यालय हिण्डोली, बून्दी

कृषि तकनीकियों के बढ़ते प्रचलन से कृषि उत्पादन में बढ़वार के साथ–साथ कृषि लागत भी बढ़ रही है। पैदावार बढ़ाने की चाह में अंधाधुध तरीके से रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग से जल, जंगल, जमीन में प्रदूषण बढ़ रहा है, फसल उत्पादन में स्थिरता आ रही है। उत्पाद की गुणवत्ता के साथ पोषकता घट रही है। पिछले कुछ वर्षो से कैंसर जैसी जानलेवा बीमारियों के मामलें बढ़ रहे है। यह रासायनिक खेती का ही दुष्परिणाम है ऐसे में किसानों को जैविक अवशेष अपघटक (वेस्ट डीकम्पोजर) अपनाने की जरूरत है। खेत में फसल अवशेष

सुलभता से सड़कर खाद नही बनता जिससे कार्बन नत्रजन अनुपात ठीक नही रहता जिसके फलस्वरूप बीज अंकुरण कम होने के साथ–साथ फसलों में कीट एवं बीमारिया का प्रकोप रहता है। साथ ही कृषि यंत्रों की कार्यक्षमता को कम करता है। परिणामस्वरूप कृषक बहुमूल्य फसल अवशेष को कचरा समझ कर जला देता है। देश में प्रतिवर्ष लगभग 600–700 मिलियन टन फसल अवशेष पैदा होता है। ऐसे में इसके निस्तारण हेतु राश्ट्रीय जैविक खेती केन्द्र गाजियाबाद द्वारा ''वेस्ट डीकम्पोजर'' नाम से फसल अवशेषों व अन्य कार्बनिक पदार्थो को शीघ्र अपघटित करने के लिए लाभकारी सूक्ष्मजीवों से तैयार एक कचरा अपघटक उत्पाद बनाया गया है। जिसके प्रयोग से फसल अवशेषों को शीघ्रता से सड़ाकर खाद तैयार की जा सकती है, इसके अतिरिक्त इसे कई रूपों में प्रयोग किया जा रहा है जैसे – जैव नियंत्रक, जैव उर्वरक, मृदा स्वास्थ्य सुधारक, कचरा अपघटक, शीघ्र कम्पोस्टिंग, जैविक कीट एवं व्याधि नाशक तथा बीज उपचार हेतु। इस उत्पाद से कृषक कई अन्य उपयोगी घोल बनाकर जैविक खेती कर रहे है, निःसंदेह भविष्य में यह उत्पाद जैविक खेती हेतु वरदान साबित होगा।

घोल बनाने की विधि : प्लास्टिक ड्रम में 200 लीटर पानी लेकर उसमें 2 किलों गुड़ डालकर अच्छे से हिलाकर घोल बनायें। अब बोतल की समस्त सामग्री इस ड्रम में डालकर लकड़ी से अच्छी तरह से हिलायें और इससे पेपर से ढकें। प्रतिदिन 3–4 बार हिलावें। सर्दी के मौसम में 7 दिन तथा गर्मी के दिनों में 3–4 दिन में घोल तैयार हो जाता है।

लाभदायक उपयोग एवं विधि

1 **पौध बीमारियों एवं व्याधिकारक के निदान हेतु :** उर्पयुक्त घोल का 10 प्रतिशत घोल प्रयोग किया जाता है। एक हैक्टर खेत में 500 लीटर घोल की आवश्यकता होती है।

2 **बीज उपचार करने हेतु :** बीज पर समान रूप से कचरा अपघटक घोल का छिड़काव कर 30 मिनट के लिए छाया में सुखाकर बुवाई करे, इससे बीज जनित के रोगों में सहायता मिलती है।

3 **अवशेष की कम्पोस्टिंग हेतु :** किसी समतल स्थान पर 1 टन फसल अवशेष (जैविक कचरा) की तह बिछा लें। तैयार घोल में इसे भिगों दें। इसके ऊपर पुनः फसल अपशिष्ट की तह फैला दें। इस पर फिर से तैयार घोल छिडक दें। 7–7 दिनों के अन्तराल में इस समस्त कमपोस्ट को उल्टते रहें और नमी 70 प्रतिशत तक बनाये रखें। 30–40 दिनों में यह कम्पोस्ट पूरी तरह से तैयार हो जायेगा।

4 खेत में नौलाई व अन्य कचरें का अपघटन कर खाद बनाना।

सावधानियाँ :

1 घोल को सीधे शरीर पर न लगने दें, कोई भी रसायन घोल में ना मिलावें।
2 सर्दी के मौसम में 7 दिन तथा गर्मी के मौसम में 3 दिन उपरान्त ही प्रयोग करें।
3 प्रयोग करने के लिये 100 लीटर घोल को ही ड्रम से निकाले तथा 1 किलों गुड़ डालकर पुनः 200 लीटर का आयतन पूर्ण कर देवें।
4 घोल को दिन में 5–7 बार हिलायें, इसके लिये कूलर की मोटर में पाईप लगाकर नीचे का घोल ऊपर छोडें अथवा डंडे से हिलायें।
5 घोल में रासायनिक फफूंदनाशी, नाशनाशी, कीटनाशी इत्यादि को नही मिलावें।

डेयरी पशुओं पर प्लास्टिक का दुष्प्रभाव

नेहा सिंह, खुशबू राज, दीपक चन्द मीना एवं एच. आर. मीना
डेरी विस्तार प्रभाग, राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

आज जिस युग में हम रह रहे हैं उसे प्लास्टिक–युग कहने में कोई झिजक नहीं है। दुनिया में हर साल खरबों की तादात में प्लास्टिक की थैलियों का इस्तेमाल होता है। प्लास्टिक का पर्यावरण पर काफी दुष्प्रभाव पड़ता है, यह बात का लोगो् को पता हैं। इसके बावजूद भी उपयोग में लेते है। लोग प्लास्टिक की थैलियों का उपयोग भोजन और कपड़े जैसी वस्तुओं को ले जाने के लिए करते हैं, जिन्हें दुकानों से खरीदा जाता है।

आज प्लास्टिक से बने विभिन्न प्रकार के सामान, खिलौने, पुर्जे, पाइप, लिफाफे इत्यादि कूड़े–करकट, नाली में पड़े रहते हैं। हल्के होने के कारण ये दूरदराज के खेत खलि–हानों, चारागाहों में भी पहुँच जाते हैं। प्लास्टिक के दुरूपयोग ने आज पशुओं में गंभीर स्वास्थ्य समस्या को उत्पन्न कर दिया है। अनगिनत मवेशियों के पेट से प्लास्टिक बरामद किया गया है और यह प्रमुख खतरा अब एक महामारी का रूप धारण करती जा रही है। प्लास्टिक का एक कण कई कणों से बना होता है। यदि हम प्लास्टिक का प्रयोग जारी रखेंगे तो पृथ्वी खतरनाक रूप से प्रदूषित हो जाएगी। प्लास्टिक शब्द का अर्थ है 'विभिन्न आकृतियों में ढलने में सक्षम' , । पर्यावरण में उनके प्रवेश के बाद यह प्लास्टिक बायोडिग्रेडेशन का विरोध करते हैं और दशकों और सदियों तक पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं और इसके साथ ही पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर जोखिम पैदा करने का कार्य भी करते हैं। लगभग, 95 प्रतिशत भारत में शहरी आवारा मवेशी विभिन्न बीमारियों से पीड़ित हैं। साल 2017 में उत्तर प्रदेश के पशु चिकित्सा विभाग की एक रिपोर्ट के अनुसार अकेले लखनऊ में प्लास्टिक खाने से हर साल करीब 1000 गायों की मौत होती है। इस समस्या से बचने के लिए आज मनुष्य को प्लास्टिक के प्रयोग पर आत्ममंथन करना होगा। ये प्लास्टिक हमारे दुधारू पशुओं के पेट में फंसकर उनके स्वास्थ्य को हानि पहुँचा रही है।

पशुओं पर प्लास्टिक सामग्री के प्रभाव

1 आर्थिक नुकसान

प्लास्टिक सामग्री के कारण मावेशियो में कई प्रभाव देखे गए हैं जैसे दूध उत्पादन में कमी, वजन का धटना, कम मसौदा क्षमता और भी कई अन्य रोग स्थितियों और मृत्यु जैसी घटना जिससे किसानों को बहुत आर्थिक नुकसान झेलना पडता है।

2 रोगजनन : जीवों के लिए प्लास्टिक को पचा पाना असंभव है। आतों में जाने वाले प्लास्टिक के रिएक्शन काफी खराब होते हैं। वे पाचन क्रिया से होते हुए फिर रेटिकुलम और तृतीय आमाशय में चली जाती हैं। प्लास्टिक कचरे के प्रकार और मात्रा के आधार पर जानवरों में विभिन्न रोग स्थितियों का सामना करना पड़ता है। प्रथम आमाशय वाले जानवरों में प्लास्टिक सामग्री के अपच के कई प्रभाव है जैसे पॉलीबीजोअर्स, रेटिकुलोपेरिकार्डिटिस जखम, रासायनिक निक्षाल और इम्यूनोसप्रेशन आदि। प्लास्टिक में मौजूद केमिकल्स की वजह से उन्हें इंफेक्शन हो जाता है जिसके कारण कुछ समय बाद उनकी मौत हो जाती है।

3 सरल अपच : प्लास्टिक की थैलियों और अन्य प्लास्टिक सामग्री को किसी जानवर द्वारा पचाया या मल के माध्यम से पारित नहीं किया जा सकता है । प्रथम आमाशय में उनकी निरंतर उपस्थिति रुमिनल पैपिल्ले के क्षीण का कारण बनती है और इस तरह सामान्य पाचन और किण्वन प्रक्रिया को प्रभावित करती है । प्रथम आमाशय में, खाद्य सामग्री प्लास्टिक सामग्री के बीच फंस जाती है और पाचन तथा किण्वन प्रक्रिया के लिए प्रोटोजोआ अनुपलब्ध हो जाती है। यह प्रथम आमाशय में सूक्ष्म वनस्पतिजात के क्रिया को प्रभावित करता है जिससे अपच होता है ।

4 दीन उत्पादन : प्रथम आमाशय और जालिका में प्लास्टिक कण पाए जाने की वजह से परिवर्तनशील फैटी एसिड के अवशोषण को प्रभावित करता है। इस प्रकार प्लास्टिक के कण दूध की उत्पादन और पशु मेद की दर में बाधा डाल सकते हैं । पेट में मौजूद प्लास्टिक धीरे–धीरे जमा होकर एक गेंद या रस्से का रूप ले लेता है और पेट की जगह को कम कर देते हैं। इससे पशु की पाचन क्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है। पशु को पाचन संबंधी रोग जैसे भूख न लगना, दस्त, गैस इत्यादि घेर लेते हैं और उसका स्वास्थ्य खराब होने लगता है।

5 प्रजनन संबंधी समस्याएं : अधिकतर प्लास्टिक एवं पॉलिथीन की गुणवत्ता निम्न स्तर की होती है। प्लास्टिक सामग्री एस्ट्रोजन गतिविधि वाले कई रसायनों को छोड़ती है। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मानकों से निम्न स्तर के गुणवत्ता वाले प्लास्टिक विषैले रसायन छोड़ते हैं। वे कई शारीरिक तंत्रों के माध्यम से प्रजनन चक्र के कई बिंदुओं पर नर और मादा दोनों की प्रजनन प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप कर सकते हैं और कम शुक्राणुओं की संख्या, प्रारंभिक भ्रुण मृत्यु दर, प्रारंभिक यौवन, आदि का कारण बन सकते हैं।

पशुओं में प्लास्टिक के प्रकोप को रोकने के लिए आज ये जरुरी हो गया है कि हम इस समस्या पर विचार करें एवं स्वेच्छा से इसे रोकने के लिए प्रयास करें। जैसे–

1. पशुपालक अपने पशुओं को ऐसे स्थानों के आस–पास न चरने दें जहां प्लास्टिक कूडे की बहुतायत हो।
2. नगरपालिका, ग्राम पंचायत द्वारा प्लास्टिक एवं अन्य ऐसे कूड़े के लिए यथासंभव स्थान चिंहित किए जाए एवं उसको समय समय पर उठाने की समुचित व्यवस्था की जाए।
3. पर्यावरण सुरक्षा एवं सुन्दरता का ध्यान रखते हुए चिप्स, पॉपकार्न, बिस्कुट, टॉफी इत्यादि के पैकेट इधर–उधर ना फेंके।
4. खाने की चीजों को खुले में प्लास्टिक की थैलियों में न फेंकें ।

इस प्रकार हम अपने पशुधन के स्वास्थ्य की रक्षा भी कर पाएंगे और उनसे अधिक दुग्ध उत्पादन प्राप्त कर राष्ट्र निर्माण में भी सहयोग देंगे। हमें यह समझना होगा कि पशु के द्वारा प्लास्टिक सेवन को रोक पाना ही इस समस्या का सबसे अच्छा उपाय है। इस समस्या का प्रकोप कम करने के लिए आज मनुष्य को प्लास्टिक प्रयोग पर आत्ममंथन करना होगा।

राजस्थान की कृषि में चुनौतियॉ एवं समाधान

भैरु लाल कुम्हार, भरत राज मीना, मन्जू एवं उदिति धाकड
कृषि विश्वविद्यालय कोटा, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली एवं स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

राजस्थान कृषि एक परिचय

राजस्थान का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 342.65 लाख हैक्टेयर हैं जों कि क्षेत्रफल की द्वष्टि सें भारत का सबसे बडा राज्य हैं। यह भारत के कुल क्षेत्र का 10.40 प्रतिशत हैं। इसकों 33 जिलों तथा 10 कृषि जलवायवीय खण्डों में विभक्त किया गया है। राजस्थान कें कुल क्षेत्रफल का वनों कें अंतर्गत क्षेत्र 26.75 लाख है., कृषि क्षेत्रफल 220 लाख हैक्टेयर, अकृषि क्षेत्रफल 26.21 लाख है., तथा पड़त भूमि क्षेत्र 63. 19 लाख हैक्टयर है। राजस्थान की 56 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर करती है। यहां की औसत वर्षा 575 मिली मीटर है। परन्तु पूर्वी राजस्थान की औसत वर्षा 704 मि. मी. है। तथा पश्चिमी राजस्थान की 310 मि.मी है। यहॉ प्रत्येक तीसरे वर्ष सुखे की संभावना रहती है। राजस्थान की फसल सघनता 106 से 126 प्रतिशत तथा सतही भू जल भारत के कुल सतह जल का 1 प्रतिशत है राजस्थान में 118 मध्यम तथा दीर्ध सिंचाई परियोजनाएं है जिसे 36. 46 लाख है में सिचाई होती है। राजस्थान में अधिकतर मौसमी नदियां है परन्तु चम्बल व माही बारहमासी है।

मुख्य फसलें : मोठ, ग्वार, बाजरा, सरसों, धनियां, जीरा, मैथी, इसबगोल व मेहन्दी

गाय की नस्ले : राठी, थारपारकर, कांकरेज, गीर व नागौरी

भेड़ : मगरा, बीकानेरी, चोकला

राजस्थान का कृषि की दृष्टि से भारत में स्थान

पहला स्थान : सरसों तथा राई, धनिया, जीरा, मैथी, ग्वार, मोठ

दूसरा स्थान : दलहनी फसलों में

तालिका : 1 भारतीय कृषि में राजस्थान की हिस्सेदारी

क्र.सं.	फसल	हिस्सा प्रतिशत में	मुख्य उगाने वाले जिले
1.	बाजरा	40 प्रतिशत	जोधपुर, बाडमेर,
2.	मोठ	85 प्रतिशत	जोधपुर, बाडमेर,
3.	सरसो तथा राई	51 प्रतिशत	भरतपुर, सवाईमाधोपुर दौंसा, टोंक, करौली, अलवर
4.	धनियां	66 प्रतिशत	कोटा, बारां, झालावाड,
5.	मैथी	87 प्रतिशत	झालावाड , नागौर, चितौडगढ़
6.	जीरा	–	जोधपुर, जालौर, बाडमेर,
7.	सौंफ	–	जोधपुर, नागौर ,टोंक, सिरोही

चुनौतियां

- वर्षा की कमी – अल्प वर्षा तथा अपर्याप्त जल प्रबन्ध
- जलवायु परिवर्तन ,
- समन्वित कृषि पद्धति का अभाव
- ग्लोबल वार्मिग, अजैविक तनाव तथा जैविक तनाव
- मृदा स्वास्थ्य का खराब होना तथा असंतुलित उर्वरकों का उपयोग
- सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी
- जैव पदार्थो की कमी
- अपर्याप्त मृदा सुक्ष्म जीव
- कम उत्पादकता
- अरूचिकर कीमतें
- संरक्षित खेती का कम क्षेत्र
- समन्वित फसल उत्पादन का न होना
- युवाओं का कृषि में कम रूझान शहरों की ओर पलायन
- फसलों की अधिकतम उत्पादन क्षमता व किसान के उत्पादन में अंतर
- कृषि नवाचार में कमी आधुनिक तकनीकियों के उपयोग न होना
- मशीनीकरण का उपयुक्त उपयोग न होना
- अधिक लागत उत्पादन।
- सामान्यता जैव प्रौधोगिकी (Biotechnonology) दूर संवेदी (Remote sensing) भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS) का प्रभावी रूप से उपयोग न होना
- वनस्पति व जनन द्रव्य (Germplasm) संरक्षित करने हेतू आधुनिक विधियॉ जैसे जीनोंटाइपिंग और अलिलमाइनिंग का उपयोग नही किया गया है

समाधान

- समन्वित कृषि पद्धति (Integrated Farming System) – जल प्रबंध (Water Management) , चारंगाह (Pasture Management), जैविक खेती (Organic Farming), शुष्क बागवानी

अपनाना (Arid Horticulture Crops), पशुधन प्रबंधन (Livestock Management), मुर्गीपालन (Poultry), मिश्रित खेती (Mixed Farming), मत्स्यपालन (Fisheries), सब्जि उत्पादन (Olericulture), मधुमक्खीपालन (Apiculture), कृषि वानिकी (Agroforestry), फूल उत्पादन (Flowericulture), अंतरशस्यन फसलें (Intercropping) तथा द्वितीयक कृषि (Secondary Agriculture) को प्रोत्साहित करना

- संरक्षित खेती (Proteted Cultivation) ग्रीन हाउस, पॉली हाउस, शेडनेट, लो टनल को प्रोत्साहित करना।
- उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग : जैसे खराब दशा वाली मृदाओं (Degraded Soil) का सुधार (Reclamation) मृदा संरक्षण (Soil Conservation) मृदा उर्वरकता मानचित्र (Soil Fertility Map) प्रति बूंद अधिक आय (Per drop more income) व क्षारीय पानी (Saline water) का समुचित उपयोग तथा समन्वित जल प्रबंध (Integrated water management) पर अनुसंधान करना व उच्च गुणवत्कता युक्त बीज (Improved Seed) उपलब्ध करवाना।
- समन्वित पादप पोषक तत्व प्रबंध (Integrated Plant Nutrient Management) :– समन्वित पोषक तत्व प्रबंध अपनाना सुक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का पता लगाना जैविक खादों का प्रयोग, वर्मीकम्पोस्ट, फार्म अवशिष्ट तथा उर्वरक दक्षता को बढाना।
- समन्वित कीट तथा व्याधि प्रबध (IPM & IDM) कीटनाशी रसायन पर्यावरणीय खतरे उत्पन्न करने के साथ साथ मृदा एंव कृषि उपज दोंनों को प्रदूषित करती है अत किसानों की भागीदारी से समन्वित कीट प्रबधन पद्धति तथा जैव एजेंटो का प्रयोग करना
- मशीनीकरण (Farm Mechanisation) को बढावा देना : सीड कम फर्टी ड्रील, जीरो टिल ड्रील, लेजर लेवलर, रोटावेटर, सोलर ड्रायर, ग्रडींग मशीन, सोलर पम्प सैट, गोबर गैस संयत्र, प्रसंस्करण ईकाईयों की स्थापना करना तथा प्रोत्साहन करना।
- चारा उत्पादन में वृद्धि करना चारा परिरक्षण तथा भन्डारण के उचित वैज्ञानिक तरींकें अपनाना जैसे हे साइलेज।
- गुणवक्ता युक्त इनपुट का निवेश करना।
- संरचनात्मक ढांचा तैयार करना : मार्केटिंग कोल्ड चैन, स्टोरेज एक्सपोर्ट तथा प्रसंस्करण ईकाईयों की स्थापना करना।
- कृषि शिक्षा तथा अनुसंधान को सहयोग करना।
- उर्जा स्त्रोतों का एकांत्रित प्रयोग करना।
- प्रसार में सहयोग तथा समता का विकास करना।
- आजीविका में सुधार करना।
- क्रेडिट में सहयोग।
- लिंग मैनस्ट्रीमिंग (Sex Mainstreaming)
- फसल विविधिकरण (Crop Diversification) के लिए इनवेस्टमेंट करना।
- संगठन तथा प्रबन्धों का पुन निर्माण।
- इन्फोमेशन कम्यूनिकेशन प्रौधिगिकी का उपयोग।
- राज्य कृषि को वैश्विक रूप से प्रतिस्पर्घात्मक बनाना।
- कृषि तन्त्र की उत्पादकता मे वृद्धि के साथ साथ कृषि मे टिकाउपन बनाये रखना।
- राजस्थान राज्य मे कृषि क्षेत्र मे समग्र स्मृद्धि लाना।
- मूल्य श्रखला तथा उद्यमिता विकास के माध्यम से कृषि एव गैर कृषि अवसरो के साथ द्वितीयक कृषि को प्रोत्साहित करना।
- राज्य में जैविक उत्पादों कें साथ साथ राज्य की विशेष तुलनात्मक लाभदायी फसलों हेतू विशेष कृषि निर्यात जोंन स्थापित करना।
- कृषि उपज मन्डियों श्रेणीकरण (Grading) तथा मानकीकरण (Standardization) सुविधाओं की स्थापित करना।
- दूर संवेदी (Remote sensing) भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS) का उपयोग कर मौसम आधारित पारदर्शी सुचनाओं का किसानों तक पहुॅचाना।
- राजस्थान राज्य कृषि उत्पाद विपणन अधिनियम 1961 में कियें गये संशोधन यथा संविदा खेती (Contract Farming) सीधी खरीद सहकारी व निजी क्षेत्र में मन्डि यार्ड स्थापित करना।
- दक्ष उन्नयन (Upscaling) तथा प्रौधोगिकी प्रसार, बीज क्षेत्र, व जल प्रबंधन हेतू सार्वजनिक निजी सहभागिता कों प्रोत्साहित करना।
- आकस्मिक योजना (Contigency planning) तैयार करना।
- मूल्य संवर्धन (Value Addition) कृषि प्रसंस्करण (Agro Processing) फसलोंतर प्रबन्ध (Post Harvest management) व कृषि उपज (Agriculture Yield) को बढावा देना।
- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (Prime Minister Crop Insurance Scheme) मानसून की विफलता या अन्य प्राकृतिक आपदा पाला बाढ अतिवृष्टि इत्यादी के कारण फसल हानि के विरूद्ध किसानों को सुरक्षा प्रदान करने हेतू किसानों को प्रोत्साहन करना।
- कृषि नवाचार (Agriculture Innovation) को प्रोत्साहित करना।

अल्प-शोषित करौंदा फल का मूल्यवर्धन: ग्रामीण लोगो के लिए एक कमाई का अवसर

महावीर सुमन एवं रूपसिंह
उधानिकी एवं वानिकी महाविधालय, झालावाड़ एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटा

अल्प–शोषित फलों ने भारत के मूल लोगों के आहार की पूर्ति में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन फलों में पोषक तत्वों की मात्रा मुख्य फलों की तुलना में अधिक होती है। इन सभी फलों के बीच, करोंदा में मूल्यवर्धन स्थायी आजीविका कमाने में ग्रामीण समुदायों के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण अवसरों में से एक है। भारत में समग्र विकास के लिए फल प्रसंस्करण क्षेत्र बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह क्षेत्र कुशल और अकुशल मजदूरों को रोजगार सुनिश्चित करता है। करोंदा में क्षमता है अधिक आजीविका का समर्थन करने के लिए अगर मूल्यवर्धन किया जाए। यह ऐपोसाइनेसी कुल का है और आमतौर पर करोंदा के रूप में जाना जाता है। यह आदिवासियों द्वारा व्यापक रूप से उपयोग किया जाने वाला औषधीय पौधा है पूरे भारत में और विभिन्न स्वदेशी प्रणाली जैसे आयुर्वेद, यूनानी और होम्योपैथी में लोकप्रिय है। यह पौधा सीमाओं के साथ कई जगहों पर उगता पाया जाता है और घने पत्तों और शाखाएं होना के वजह से बाड़ का काम करता है। फल एक गोला बेरी, आयताकार, व्यापक–अंडाकार या गोल, 125 मि.मी. से 250 मि.मी. लंबा है। परिपक्व फल बहुत खट्टे होते हैं, लेकिन पके होने पर खट्टे मीठे होते हैं। करोंदा फल आयरन का एक समृद्ध स्रोत और विटामिन ए, सी और बी कॉम्प्लेक्स, फाइबर, कार्बोहाइड्रेट और खनिज जैसे कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटेशियम, सोडियम और सल्फर का उत्कृष्ट स्रोत है। ताजा करोंदा फल आमतौर पर नहीं खाया जाता है, क्योंकि यह अत्यधिक अम्लीय और कसैला होता है। इसलिए करौंदा एक लोकप्रिय टेबल फल नहीं है। लेकिन, इसके संसाधित रूपों में काफी संभावनाएं मिली हैं। फल को मिठाई के रूप में खाया जा सकता है या फिर कैंडी, जेली, स्कवैश और चटनी जैसे फलों के उत्पादों की तैयारी में उपयोग किया जाता है। परिपक्वता पर तोड़ा हुआ फल कमरे के तापमान पर 5 से 7 दिनों तक संग्रहित किया जा सकता है, लेकिन पके हुए चरण में, इसे केवल दो दिनों तक संग्रहित किया जा सकता है। कुछ मूलवर्धित उत्पादों और उनके बनाने की विधि का उल्लेख नीचे किया गया है।

करोंदा जैम: करोंदा के विभिन्न रंगो के फल बैंगनी से गहरे लाल रंग भारत में उपलब्ध हैं जिनका उपयोग जैम बनाने के लिए किया जाता है। पका हुआ फल एसिड और सूक्ष्म और मैक्रो पोषकतत्वों से भरा होता है जो चीनी के साथ अच्छी तरह से संयोजित होता है और विभिन्न प्रकार के जाम तैयार करने के लिए उपयोग किया जाता है। फल में महत्वपूर्ण मात्रा में पेक्टीन होता है इसलिए यह वाणिज्यिक जाम या जेली बनाने के लिए उपयुक्त है। ताजा और बिना पका हुआ करोंदा फल ठीक से धोया जाता है और हिस्सों में काटा जाता है। बीज को हटा दिया जाता है और फलों को भारी तले वाले बर्तन (पानी के साथ) में रखा जाता है। फलों को पानी में तब तक उबाला जाता है जब तक वे कोमल नहीं हो जाते। फिर चीनी (1150 ग्राम चीनी/किग्रा करोंदा लुगदी) को डाला जाता है और बूंद परीक्षण, टीएसएस (68-70°), शीट परीक्षण द्वारा अंतिम बिंदु तक आंका जाता है और सरगर्मी जारी रखी जाती है। चिकनी जैम की तैयारी के लिए निविदा फल को एक छलनी के माध्यम से पारित किया जाता है इससे एक चिकनी गूदा प्राप्त किया जाता है और फिर चीनी मिलाया जाता है। ठंडा होने पर इसे कांच की बोतल में पैक कर लें। एफपीओ निर्देशों के अनुसार, जैम में अंतिम उत्पाद में न्यूनतम 68° टीएसएस होना चाहिए। यह जैम कसी भी गिरावट के बिना कम से कम तीन महीने के लिए संग्रहित किया जा सकता है।

करोंदा की चटनी: मसाले (हरी मिर्च 25 ग्राम, गुड़ 40 ग्राम, लहसुन 2 ग्राम, जीरा 6 ग्राम, धनियां 20 ग्राम, नमक 15 ग्राम, कढ़ी पत्ता 2 ग्राम) मिक्सर ग्राइंडर की सहायता से महीन पेस्ट में बना लिया जाता है और अपरिपक्व् करोंदा फल (100 ग्राम) को डाला जाता है और एक स्वीकार्य महीन बनावट में पीस लिया जाता है।

करोंदा पाउडर : करोंदा के फलों को 5 मिनट के लिए ब्लांच किया जाता है और इसके रंग में सुधार के लिए 15 मिनट के लिए 0.5 प्रतिशत केएमएस के साथ सल्फर का उपयोग किया जाता है। तब फल को मोटे तौर पर पीसकर 160 सेन्टीग्रेड में केबिनेट ड्रायर में निर्जलित किया जाता है। सूखे उत्पादों को तब पैक किया जाता है और एक ठंडी और सूखी जगह में संग्रहित किया जाता है।

करोंदा पेय: आरटीएस पेय, स्कवैश जैसे विभिन्न प्रकार के पेय पदार्थ करौंदा के रस/गूदे से तैयार किए जा सकते हैं। इसके अलावा, अलग–अलग अनुपात में अमरूद, पपीता और अनानास के रस के साथ करोंदा का रस मिश्रित किया जा सकता है और अनानास के रस के साथ करोंदा के रस का संयोजन सबसे अच्छा संगठनात्मक गुणवत्ता और स्वीकार्यता दर्शाता है।

प्राकृतिक रंग: पके करौंदा फलों से एक प्राकृतिक खाद्य रंग एवं पोषक तत्व पूरक तैयार किया जाता है। सूत्रीकरण को 'लालिमा' नाम दिया गया है। इस पिगमेंट सस्पेंशन फॉर्मूलेशन का 1 मिलीलीटर एक सर्विंग के लिए इष्टतम लाल रंग देने के लिए पर्याप्त है कोई भी रंगहीन पेय को (100 मिली) जैसे नींबू पानी।

डिब्बाबंद करौंदा: करोंदा फल को चीनी की चाशनी के साथ कैन्ड किया जा सकता है।

करोंदा स्वाद वाली आइसक्रीम: करोंदा के पके फलों को आइसक्रीम के प्राकृतिक फ्लेवरिंग एजेंट के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। आइसक्रीम में 20 फीसदी करोंदा का गूदा होता है जिसे समग्र स्वीकार्यता मि.ली. है ।

निष्कर्ष: करोंदा का भंडारण जीवन बहुत कम है, कारण इसका नरम मांस और उच्च नमी की मात्रा। इसके अलावा, फलों का अत्यधिक सेवन नहीं किया जा रहा है, क्योंकि इनमें अम्लीय और कसैले गुण होते हैं और इसका बाजार भाव बहुत कम है । इस प्रकार, इन फलों में मूल्य वर्धन करने से किसानो को बहुत लाभ हो सकता है।

सीड बॉल्स: वन जीर्णोद्धार एवं जैव विविधता संरक्षण का सरल तरीका

राजेश कुमार शर्मा, अरविंद नागर, भुवनेश नागर एवं राजेन्द्र कुमार यादव
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सीड बॉल या सीड बम बॉल को एक फसल के बीज या अलग अलग फसलों के बीज के मिश्रण को खनिज मिट्टी (मिट्टी और खाद) के साथ आवृत कर तथा उसके बाद धूप में सुखाकर तैयार की जाती है । जब जलवायु परिस्थितियां अनुकूल हो तब इन सीड बॉल को किसी भी भाग में छितराया जा सकता है। प्राचीन मिस्र, यूनानी और आधुनिक जापान द्वारा सीड बॉल का उपयोग किया जाता है इसके बावजूद हाल हीं के वर्षो में सीड बॉल अवधारणाओं को महत्व मिल रहा है। लेकिन इसका वास्तविक मूल अभी भी अज्ञात है। सीड बॉल मिट्टी में लिपटा हुआ बीज को उगाने के तरीकों में से बहुत पुराना तरीका हैं। चूंकि दुनिया भर में इसका उपयोग किया जाता है इसलिए इसको कई नामों से जाना जाता है जैसे बीज बम, मिट्टी के बीज की पकौड़ी, बीज छर्रे आदि, लेकिन बनावट सभी के लिए सार्वभौमिक है। बीज बॉल अवधारणा एक पारंपरिक प्रौद्योगिकी है जिसको पूर्वजों द्वारा कई देशों में उपयोग किया जा रहा है । बाद में फिर से खोजा और मासानोबू फुकुओका, एक कृषि वैज्ञानिक और किसान, द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आधुनिक दुनिया में लोकप्रिय किया।

सीड बॉल के घटक

अ) मिट्टी: सामान्य तौर पर, चिकनी मिट्टी का उपयोग सीड बॉल की तैयारी के लिए किया जाता है, क्योंकि यह प्रकृति में चिपचिपा है, लेकिन किसी भी कृषि मिट्टी या खेती की मिट्टी (लाल मिट्टी, काली मिट्टी आदि) जो एक अच्छा बंधनकारी प्रकृति रखता है, भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

ब) खाद: सीड बॉल बनाने के लिए बारिक खाद सामग्री का उपयोग किया जाना चाहिए या ढेले और बड़े कणों को हटाने के लिए इसे छान लेना चाहिए। वर्मीकम्पोस्ट इनमें से एक है जो बारिक है, पूरी तरह से बना है, जैविक रूप से सक्रिय और पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्वों से समाहित है। खाद के आलावा हम कीट प्रतिकारक जैसे एलियम, टकसाल, काली मिर्च, आर्टेसिमिया आदि भी शामिल कर सकते हैं जिसमें मजबूत तीखापन है तथा कीटों से बचाते है। इसके अलावा ये सीड बॉल को टूटने एवं कीड़े और कीटों द्वारा खाने से रक्षा करेगा। बीज बॉल को तोड़ने से बचने के लिए, लंबी दूरी तक वितरित करने के लिए तथा ताकत बढ़ाने के लिए कुछ अन्य घटक अर्थात् धान का पुआल, चावल का पेटा, पौधे के अवशेष आदि भी इस्तेमाल कर सकते हैं ।

स) बीज: सीड बॉल के लिए बीज का चयन उपयोग के उद्देश्य के आधार पर कर सकते हैं। वनीकरण और बंजर भूमि में रोपण के लिए देशी जंगली पौधों और पेड़ों की प्रजातियों के बीज का उपयोग किया जा सकता है। बीज के प्रकार के आधार पर कठोर बीज आवरण को नरम करने के लिए बीज का पूर्वउपचार भी ले सकते हैं जैसे शारीरिक परिशोधन, स्तरीकरण, पानी में भिगोना आदि जो अंकुरण दक्षता को बढ़ाते है। इनके आलावा, सब्जी, अनाज, दालें, फल, फूल की फसलें सीड बॉल विधि द्वारा सब कुछ उगाया जा सकता है । यह बीजों की प्राकृतिक आपदाओं, चूहों और पक्षियों से सुरक्षा करता है और अधिक समय के लिए बीजों को संग्रहीत किया जा सकता है । बीज का उपयोग करने से पहले बीज प्रकार और उनकी अंकुरण क्षमता के बारे में ज्ञान होना चाहिए।

सीड बॉल की तैयारी: सीड बॉल बनाना आम तौर पर सरल है और घटको का अनुपात फुकुओका के सुझाव के अनुसार लिया है

- सूखा चूर्ण मिट्टी का 5 हिस्सा
- बारीक कटी हुई खाद का 3 भाग
- बीज मिश्रण का 1 हिस्सा

सीड बॉल सामग्री (मिट्टी, खाद, और बीज) को ठीक से मिश्रित करते हैं और हाथ द्वारा गेंदों को तैयार किया जाता है । अंत में गेंदों को ठीक तरह से छाया में सूखाया जाता है । इसमें एक प्रमुख मुद्दा यह है कि कभी–कभी जल्दी अंकुरण क्षमता वाला बीज अंकुरित होगा और फैलाने से पहले ही सूख जाता है। इस लिए सीड बॉल में जो बीज हम उपयोग कर रहे हैं उसके बारे में ज्ञान होना चाहिए ।

सीड बॉल का वितरण

छोटे क्षेत्रों को कवर करने के लिए बीज गेंदों को मैन्युअल रूप से या पारंपरिक बंदूकों का उपयोग करके वितरित किया जा सकता है। यदि बड़े क्षेत्रों को कवर करने और वन क्षेत्रों में जहां मानव प्रवेश पूरी तरह प्रतिबंधित है, तो सीड बॉल्स को हेलीकॉप्टरों द्वारा खड़ी ढलान वाले क्षेत्रों में वितरित किया जा सकता है (मिलर, 2020)। जबकि शहरी क्षेत्रों में सीड बॉल्स को गमलों आदि में उगाया जाता है।

निष्कर्ष : फसल पौधों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए कई आधुनिक उपकरण और तकनीकों का विकास किया गया है। हरियाली को वापस लाने के लिए वैकल्पिक तरीके भी तैयार किए गए हैं लेकिन फिर भी कई अगम्य वन क्षेत्र, स्थापित लकड़ी के जंगल और कुछ खाली भूमि हैं। इन क्षेत्रों का उचित तरीके से उपयोग करने से जैव विविधता को बढ़ाने में मदद मिल सकती है। जंगली पौधों और वृक्ष प्रजातियों का उपयोग प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र लाने और वनस्पतियों और जीवों में सुधार करने में मदद कर सकता है। इस प्रकार यह सीड बॉल रणनीति जैव विविधता में सुधार के सर्वोत्तम विकल्पों में से एक है। अब तक कई देशों में, प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र को बढ़ाने या वापस लाने के लिए वृक्षारोपण के उद्देश्य से संरक्षणवादी गैर सरकारी संगठनों, शैक्षणिक संस्थानों, वन संस्थानों और सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा सीड बॉल अभियान चलाए जाते हैं। जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता की हानि, वनों की कटाई आदि के वर्तमान परिदृश्य में, सीड बॉल छोटे और बड़े दोनों क्षेत्रों में खोए हुए पेड़ों और जंगलों को फिर से जीवंत करने, शहरी रोपण, बंजर भूमि को फिर से जीवंत करने आदि का एक बड़ा अवसर प्रदान करता है।

फसल चक्र में बदलाव-आज की आवश्यकता

योनिका सैनी, उदिति धाकड़, बी.एस.मीणा एवं प्रताप सिंह
कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा एवं कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

खेती के प्रारम्भिक दौर से ही मानव अपने भरण–पोषण हेतु अनेक प्रकार की फसलें उगाता चला आ रहा है। किसी खेत में एक निश्चित फसल न उगाकर फसलों को अदल–बदल कर उगाने की परम्परा चली आ रही है। फसल उत्पादन की इसी परंपरा को फसल चक्र कहते हैं अर्थात् किसी निश्चित क्षेत्र पर निश्चित अवधि के लिए भूमि की उर्वरता और उत्पादकता को बरकरार रखने के लिए फसलों को अदल–बदल कर उगाने की क्रिया को फसल चक्र कहते हैं। मौसम के अनुसार फसलों का चयन किया जाता है। किसी खेत में लगाातर एक ही फसल या एक ही तरह के फसल चक्र अपनाने से कालान्तर में फसलों की उत्पादकता कम होने लगती है और मृदा के गुणों पर भी इसका कुप्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। देश के अनेक भागों में सर्वाधिक प्रचलित फसल प्रणाली धान–गेहूँ है।

धान–गेहूँ आधारित फसल–चक्र से प्राकृतिक संसाधन दबाव में है। चाहे वह मिट्टी की उर्वराशक्ति हो, या भू–गर्भ जल की। गत् चार दशकों से इन संसाधनों का अत्यधिक दोहन हुआ है। कम पानी एवं कम पोषक तत्व चाहने वाले माटे अनाजों, दलहनों और तिलहनों का क्षेत्रफल घटा हे। इससे यह पता चलता है कि फसल–चक्र में दलहन सम्मिलित करने से न केवल भोजन–पोषण की समस्या हल होगी बल्कि मिट्टी की उर्वरा शक्ति एवं उसके भौतिक और जैविक गुणों में सुधार होगाा। सरकार द्वारा दलहन विकास कार्यक्रम चलाया गया है जिसमें उर्वरक–उद्योग और किसानों की सहभागिता जरूरी है। अब समय की मांग है कि प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को बचाने हेतु मृदा जीर्णोद्धार एवं उत्पादकता वृद्धि के सार्थक प्रयास हों।

यूरिया–डीएपी आधारित खेती के फलस्वरूप मृदा–उर्वरता के टिकाऊपन का खतरा उत्पन्न हो गया है। आज न केवल इस फसल चक्र की उत्पादकता वृद्धि स्थिर हो गई है बल्कि एक निश्चित उत्पादन प्राप्त करने के लिए पहले की अपेक्षा अधिक मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करना पड़ रहा है क्योंकि बहुपोशक तत्वों की कमी के कारण उर्वरक उपयोग क्षमता में काफी कमी दर्ज की गयी है। इसके अलावा उपजाऊ मृदा का क्षरण, जीवांश पदार्थ की मात्रा में लगातार गिरावट, मृदा में लाभदायक सूक्ष्म जीवों की गिरती संख्या, केंचुआ जैसे मित्र–जीवों की संख्या में गिरावट, कीड़े और बीमारियों और खरपतावार की समस्या में अनवरत वृद्धि, मृदा की संरचना व जलधारण क्षमता में कमी के अलावा भूमि के अन्य भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में आया विकार, मृदा में लवणीयता–क्षारीयता की बढ़ती समस्या, ट्यूबवेल सिंचित क्षेत्रों में भू–गर्भ जल का गिरता स्तर तथा नहरी क्षेत्रों में जल रिसाव और जल प्लावन व जल प्रदूषण की बढ़ती समस्या, पीड़क नाशकों (कीटनाशकों तथा खरपतवारनाशकों) के बढ़ते प्रयोग के कारण उनके प्रति फसलों की प्रतिरोधक क्षमता में कमी और बढ़ता प्रदूषण जैसी समस्याएं मुंह बाये खड़ी हैं।

सामान्यत: निम्न कारणों से फसल चक्र अत्यधिक आवश्यक है

क) एक खेत में लगातार एक प्रकार की फसल उगाने से किसी एक विशिष्ट पोषक तत्व की या खनिज की कमी हो सकती है जो भूमि की उर्वरक क्षमता को प्रभावित करती है।

ख) लगातार एक ही प्रकार की फसल उत्पन्न किये जाने पर मृदा जन्य पादप रोग उत्पन्न हो सकते हैं जो फसल की उत्पादन क्षमता को प्रभावित कर सकते हैं।

ग) लगातार एक ही प्रकार की फसल उत्पन्न करने से उत्पादन क्षमता प्रभावित होती है।

इन समस्यायों से निपटने के लिए फसल चक्र के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए फसल चक्र में दलहनी फसलों का समावेश आवश्यक हो गया है क्योंकि दलहनी फसलों से एक टिकाऊ मृदा उर्वरता और उत्पादकता की प्रक्रिया विकसित होती है। अधिक लाभकारी फसल चक्रों में रबी में चना, मटर, मसूर और खरीफ में अरहर, उड़द, मूंग, लोबिया, राजमा आदि का समावेश आवश्यक है।

फसल चक्र में बदलाव : बेहतर उर्वरता प्रबंधन व संसाधन संरक्षण हेतु आजकल उत्तर–पश्चिम भारत में धान–गेहूँ फसल चक्र के स्थान पर बेबीकॉर्न–मक्का–अगेती आलू–पछेती गेहूँ–मूंग, लोबिया–आलू–ग्रीष्मकालीन मक्का, मक्का–गेहूँ–मूंग, मक्का–आलू–मक्का–आलू–गीष्मकालीन मूंगफली, मक्का–सरसों–ग्रीष्मकालीन मूंगफली व बेबी कॉर्न अगेती सरसों पछेती गेहूँ–मूंग फसल चक्र किसानों के बीच काफी लोकप्रिय हो रहे हैं। इन फसल चक्रों के अन्तर्गत किसानों को वर्ष भर आमदनी मिनती रहती है। इसके अलावा उनकी घरेलू आवश्यकताओं जैसे अनाज, दलहन, तिलहन और चारे की भी पूर्ति होती रहती है। साथ ही फसल चक्र में मूंग की फसल लेने से मृदा स्वास्थ्य और गुणवत्ता में भी सुधार होता है। इस

प्रकार गेहूँ की कटाई के बाद मूंग की फसल लेनी चाहिए। मूंग की फलियों की दो तुडाई करने के बाद फसल की जुताई कर मिट्टी में मिला देना चाहिए।

फसल चक्र के निर्धारण में कुछ मूलभूत सिद्धान्तों को ध्यान रखना जरूरी होता है जैसे

1. उथली जड़ वाली फसल के बाद गहरी जड़ वाली फसल को उगाना।
2. अधिक पोषक तत्व चाहने वाली फसलों के बाद कम पोषक तत्व चाहने वाली फसलों का चयन।
3. अधिक पानी चाहने वाली फसल के बाद कम पानी चाहने वाली फसल का चयन।
4. अधिक कर्षण क्रिया (जुताई व निराई–गुड़ाई) चाहने वाली फसल के बाद कम कर्षण क्रिया चाहने वाली फसल।
5. धान्य फसलों के बाद दलहनी फसलों का चयन।
6. एक खास रोग से प्रभावित होने वाली फसलों को लगातार एक ही खेत में नहीं उगाना।
7. फसलों का चयन किन्तु फसल चक्र में उनका समावेश स्थानीय बाजार की माँग के अनुरूप रखना।
8. फसल का समावेश जलवायु तथा किसान की आर्थिक स्थिति के अनुरूप करना चाहिए।

फसल चक्रण के लाभ

1. फसल चक्र के प्रक्रम के अंतर्गत परिवर्तित करके भिन्न–भिन्न फसल उत्पन्न किये जाने पर मृदा में पोषक तत्वों की न्यूनता नहीं होती क्योंकि सभी पादपों की आवश्यकतायें पृथक होती हैं। इससे भूमि में उर्वरा शक्ति बनी रहती है।
2. फसल चक्र प्रक्रम अपनाने पर उत्पन्न होने वाला कोई मृदा अन्य पादप रोग अगली ऋतु में परपोशी अनुपस्थित होने के कारण स्वयं ही नष्ट हो जाता है। जिससे कीटों, रोगों तथा खरपतवारों को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है।
3. फसल–चक्रण से विभिन्न फसलों से अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है।
4. दाल वाली फसलों द्वारा मृदा की भौतिक दशा में सुधार आता है तथा मृदा में जैव पदार्थो की प्रचुरता बनी रहती है।
5. सिंचाई एवं उर्वरक आदि सीमित साधनों द्वारा भी फसलों को उगाया जा सकता है।
6. फसल उत्पादकों की माँग को बाज़ार में पूरा किया जा सकता है।
7. मृदा को वायु तथा जल क्षरण से बचाया जा सकता है।
8. फसल–चक्र को प्रयोग में लाने से उनके उत्पादन में बहुत कम खर्च होता है।
9. किसानों की अधिकतर घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है।
10. मनुष्यों तथा पशुओं के श्रम का सही–सही प्रयोग होता है।
11. फसल–चक्र द्वारा विभिन्न फसलों से अधिक उपज प्राप्त होती है।
12. फसल–चक्र के द्वारा मृदा की उर्वरता बनाए रखने में सहायता मिलती है।

मिट्टी का सुधार-अच्छी फसल का आधार

उदिति धाकड़, राजेन्द्र यादव, योनिका सैनी एवं बलदेव राम
कृषि महाविघालय, कोटा एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा

विकासशील देशों में मिट्टी की बर्बादी पर विश्व खाद्य संगठन ने चिंता जाहिर करते हुए कहा है कि अगर इसी तरह से मिट्टी की बर्बादी होती रही तो विकासशील देशों की उत्पादन क्षमता में 20 प्रतिशत तक कमी आ सकती है। अतः खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से हमें भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखना है।

राजस्थान में मिट्टी के हालात नाजुक : प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक प्रो. एम. एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में गठित टास्क फोर्स की रिपोर्ट के अनुसार उर्वरा शक्ति की दृष्टि से 75% प्रदेश की भूमि का स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ है। मिट्टी में आर्गेनिक कार्बन की 82% की कमी होकर आर्गेनिक कार्बन की मात्रा न्यून श्रेणी (0.5 प्रतिशत) में है । आर्गेनिक मात्रा की कमी के कारण भूमि में नत्रजन की मात्रा में 90 प्रतिशत तक की कमी आ गई है जिसकी पूर्ति के लिए रासायनिक खाद यूरिया का अंधाधुंध उपयोग करने एवं फसलों की सघनता बढ़ने के कारण मौलिक उर्वरा शक्ति घटने के साथ ही भूमि की भौतिक संरचना भी बिगड़ रही है। इससे जमीन कठोर और क्षारीय बन रही है। फास्फोरस की भी 64% तक कमी हो गई है। राइजोबियम, एजेटोबेक्टर, ट्राइकोडर्मा जैसे मित्र जीवाणुओं की संख्या घट रही है जो भविष्य में अत्यन्त नुकसानदेह है। भूमि में गिरावट आदि का प्रमुख कारण पोषक तत्वों के अलावा भूमि में गौण व सूक्ष्म तत्वों जैसे गंधक, जस्ता, लोहा, तांबा, मैग्नीज आदि की कमी दिनों दिन बढ़ती जा रही है।

कैसे सुधारें मृदा स्वास्थ्य : भूमि की उर्वरा शक्ति मुख्यतः भूमि की ऊपरी परत से लेकर भूमि की 6–7 सेंटीमीटर (ढाई–तीन इंच) नीचे तक ही पाई जाती है। इसके नीचे की मिट्टी पानी को धारित करती है। किसान जुताई इसी ऊपरी उपजाऊ परत को ढीला करने के लिए करते हैं। किसान खेत के चारों ओर मेड़ नहीं बनाए तो वर्षा पानी से ये जुती हुई मिट्टी बह सकती है तथा इस प्रकार यह जरूरी है कि टिकाऊ एवं सतत् उत्पादन के लिए भूमि के कटाव व क्षरण को रोका जाए। इस प्रकार भू संरक्षण एवं पानी संरक्षण दोनों आवश्यक हैं। अन्य उपायों में भूमि में मित्र जीवाणुओं की वृद्धि करना, उचित नमी बनाए रखना, मिश्रित फसलें बोना, हरी खाद गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, खाद देना संरक्षण हेतु पलवार विछाना, जिप्सम, सार्वजनिक एवं निजी भूमियों में जल ग्रहण प्रवृत्ति बढ़ाना, चैकडेम बनाना आदि महत्त्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार अवशेषों को खेत में जलाने की बजाय उसे भूमि में मिला देना अच्छा रहता है। इस प्रकार एकीकृत उपायों को अपनाकर भूमि की उपजाऊ शक्ति को मजबूत करना चाहिए।

मिट्टी परीक्षण क्यों एवं कैसे : खेत की मिट्टी अपने बारे में बोलकर नहीं कह सकती कि उसमें कितने पोषक तत्वों की कितनी मात्रा मौजूद है एवं कितनी किस फसल के लिए और चाहिए। प्रायः पोषक तत्वों की कमी भूमि में धीरे–धीरे पनपती है और पौधों पर जब पोषक तत्वों की कमी के चिन्ह प्रकट होने लगते हैं तब तक काफी देर हो चुकी होती है और फसल की पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है। अतः खेत की मिट्टी की उपजाऊ शक्ति का सही आंकलन करवाना आवश्यक है जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि निरन्तर अच्छी पैदावार पाने के लिए खेत में कौन–कौन सी खाद व उर्वरक कितनी मात्रा में डालें ऐसा मिट्टी परीक्षण के आधार पर ही संभव है।

बिना मिट्टी जाँच कराए उर्वरक डालेंगे तो ये नुकसान होंगे

- जरूरत से कम उर्वरक डालने से पैदावार कम, जरूरत से ज्यादा उर्वरक डालने से धन की हानि एवं फसल को नुकसान मिट्टी खराब होना।
- नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश (NPK) का वास्तविक अनुपात 3:2:1 है जो यह प्रदर्शित करता है कि पोटाश की तुलना में नत्रजन व फास्फोरस का अत्यधिक उपयोग हो रहा है। इससे भूमि में पोषक तत्व होते हुए भी पौधों को नहीं मिलते हैं।

भूमि के लवणीय एवं क्षारीय होने के कारण

- नहरों व तालाबों से सिंचित क्षेत्रों में भू जल स्तर जमीन की सतह के नजदीक आने एवं पानी के रिसाव के कारण समस्या ग्रस्त क्षेत्र बढ़ता जा रहा है।
- कम वर्षा एवं ज्यादा वाष्पीकरण के कारण, भूमि में मौजूद लवण पानी में घुलकर ऊपरी सतह पर आ जाते हैं और पानी के भाप बनकर उड़ जाने पर भूमि की सतह पर एकत्रित होते रहते हैं।
- भूमिगत जल में लवण व क्षार होने के कारण कुओं से सिंचित क्षेत्रों में सिंचाई करने से भूमि की सतह पर लवणों की मात्रा बढ़ती जा रही है।
- जल निकास नहीं होने के कारण निचले स्थानों पर जल एकत्रित हो जाता है तथा साथ लाये हुए लवणों को वही छोड़ देता है।
- मिट्टी की निचली सतहों में कड़ी परत होने अथवा एक ही गहराई पर जुताई करने से कड़ी परत बनने के कारण नीचे की तहों तक पानी नहीं जा पाता है। इस कारण घुलनशील लवण भूमि की ऊपरी सतह पर एकत्रित होते रहते हैं।
- आवश्यकता से अधिक पानी देने अधिक सिंचाई करने से भी समस्या गस्त क्षेत्र बढ़ता जा रहा है।
- लवणीय व लवणीय–क्षारीय भूमि में लवणों के घुल जाने के कारण भूमि में घोल की सान्द्रता बढ़ जाती है जिससे पानी पौधे में जाने के बजाय पौधों से बाहर आता है और पौधों में पानी की कमी हो जाती है। नमी की कमी के कारण बीज का अंकुरण कम होता है, जड़ें कम फैलती है एवं सिर्फ भूमि की ऊपरी सतह में ही फैलती है। पौधे छोटे रहकर पीले पड़ जाते हैं। उपज कम होती है। भूमि में पोषक तत्व उपलब्ध होने पर भी पौधे उनको ग्रहण नहीं कर पाते एवं वे पीले पड़कर मर जाते हैं।

समस्या ग्रस्त भूमि में निम्न कृषि क्रियाएँ अपनाकर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है

- भूमि पर अत्यधिक लवण हो तो भूमि की ऊपरी सतह को ट्रेक्टर से स्केपर लगाकर खुरचकर अलग कर दें उसके स्थान पर अच्छी मिट्टी डालें। जैविक खाद, गोबर की खाद का अधिक प्रयोग करें।
- बरसात के पहले खेत को समतल करें।
- वर्षा से पूर्व खेत की गहरी जुताई करें जिससे नीचे भूमि में मौजूद कड़ी परत टूट जाये। इससे वर्षा के पानी में घुलनशील लवण पुल कर भूमि की निचली सतहों में चले जायेंगे। जल व वायु प्रवेश ठीक होगा बीज का अंकुरण अधिक होगा।
- वर्षा के जल को रोकने लिए खेतों को छोटे–छोटे भागों में बांट दें। जिससे वर्षा के जल में लवण घुलकर नीचे चले जायेंगे लवण घुलकर नीचे न जा सकें तो लवण घुले पानी को खेत से बाहर निकालें देवें अगर वर्षा का जल ज्यादा समय तक खेत में भरा रहे तो पानी को खेत के ढलान वाले भाग की ओर किसी सुरक्षित स्थान या पास में बहने वाले नदी या नाले की तरफ निकाल दें।

विभिन्न फसलों की लवण सहनशीलता

● **उच्च सहनशील**–जौ, चुकन्दर, ढेंचा, कपास, पालक, शलजम, शकरकन्द, खजूर, नारियल, साल्टबुश, बथुआ, दूधघास, बरमूडा घास	**विभिन्न फसलों की लवण सहनशील किस्में** ● **गेहूँ**–खारचिया–65, राज–3077, के आर एल 1–4, राज 1972 ● **जौ**–बी एल 2, आर डी 103, आरडी 37 ● **धान**–आई आर 8, जया, रत्ना, पदमा, पूसा 2–21 ● **तरबूज**–शुगर बेबी, दुर्गापुरा केसर ● **अलसी**–आर एल 102–71, त्रिवेणी
● **मध्यम सहनशील**–गेहूँ, जई, धान, तारामीरा, सरसों, मेथी, मक्का, बाजरा, सूरजमुखी, अरण्डी, ज्वार, गन्ना, टमाटर, पत्ता गोभी, मिर्ची, फूलगोभी, आलू, गाजर, प्याज, बैंगन, काशीफल, मटर, अनार, अन्जीर, जैतून, अंगूर, रिजका, बरसीम, सूडान घास, नेपियरघास।	
● **असहनशील**–चना, मटर, ग्वार, तिल, लोबिया, मूंग, मोठ, सेम, भिण्डी, लौकी, नाशपाती, सेव, सन्तरा, बेर, बादाम, आड़ू, नींबू, पपीता, आम, अमरूद, तुरई।	

- दो सिंचाई के बीच का अन्तर कम कर जल्दी जल्दी हल्की सिंचाई करें इससे जड़ क्षेत्र में लवणों का जमाव नहीं होगा।
- बीज की मात्रा 15 से 20% अधिक काम में लेनी चाहिये क्योंकि इस प्रकार की मिट्टी में बीज का अंकुरण कम होता है।
- सिफारिश अनुसार भूमि में जिप्सम मिलाकर भूमि सुधार किया जा सकता है। इनका उपयोग भूमि में क्षार की मात्रा को (सोडियम प्रतिशत के आधार पर) ध्यान में रखते हुए किया जाता है। बताई गई जिप्सम मात्रा डालकर जुताई कर भूमि में 10–15 सेन्टीमीटर की गहराई तक मिला देवें। मेडबन्दी कर वर्षा जल एकत्रित करें वर्षा न हो तो सिंचाई कर खेत में पानी भरें। जिप्सम में मौजूद कैल्शियम धुलकर भूमि में जाने से सोडियम बाई कार्बोनेट घुलकर जड़ क्षेत्र से नीचे चला जाता है। इससे जमीन खराब होने से बचती है।
- गन्धक पाइराईट्स का प्रयोग भी भूमि सुधार के लिए कर सकते हैं। जाँच रिपोर्ट के आधार पर गायक का बारीक चूर्ण फसल बोने के एक से डेढ़ माह पूर्व खेल में फैलाकर मिट्टी पलटने वाले हल से मिट्टी में मिला दें। गन्धक डालने के बाद नमी बनाये रखें। खेत समतल करने के बाद खेत में पाइराईट मिलाकर तुरन्त हल्की सिंचाई करें। सूखने पर फिर पानी भरें यह क्रिया एक सप्ताह तक करें।
- शक्कर मीलों से प्राप्त प्रेस–मड भूमि सुधार हेतु काम में लिया जा सकता है।
- अधिक लवणीय मृदा में कूंडो में बोई जाने वाली फसलों को एक कूंड छोड़कर दूसरें कुंड में बोना चाहिये तथा फसल वाली कूंड़ों में ही सिंचाई करनी चाहिये।
- लवण प्रभावित भूमि में रिज एवं फरों पद्धति से बीज की बुवाई करें। कूंड की साईड में बीज बोयें। इससे लवण कुंड की ऊपरी सतह पर आकर जमा होंगे एवं पौधों की बढ़वार होती रहेगी।

हरी खाद से मिट्टी सुधार : हरी खाद से तात्पर्य ऐसी पत्तीदार फसलों से है जो शीघ्र बढ़ती हैं सनई ढ़ेचा ग्वार। इन फसलों को बड़ी होने पर फूल आने से पहले खेत में जोतकर मिट्टी में दबा दिया जाता है। ये फसलें जीवाणुओं द्वारा सड़–गल कर उत्पादन बढ़ाती है। हरी खाद, गोबर की खाद, फसल अवशेष आदि को क्षारीय भूमि सुधार के काम में लेवें। ढेंचे की फसल का एक बीघा में 15 किलो बीज बोयें। फूल आने पर भूमि में पलट देवें ताकि यह सड़ कर मिट्टी में हवा व पानी का प्रवेश बढ़ायें। इससे जैविक पदार्थ एवं नत्रजन जमीन में मिलकर पौधों को प्राप्त होगी। यही कार्य गोबर की खाद मिलाकर भी किया जा सकता है। हरी खाद के लिए ढेंचा के लिए बीज दर 60 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर (चार बीघा पक्की), सनई के लिए बीज दर 45 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर, ग्वार के लिए बीज दर 30–40 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर बीज बुआई के काम में लिया जाना चाहिए। हरी खाद की फसल शीघ्र बढ़ने वाली एवं अधिक पत्तीदार होनी चाहिए। इन फसलों का डण्ठल तथा तना मुलायम एवं रसदार होना चाहिए। फसल फलीदार होनी चाहिए ताकि उसके पोधों की जड़ों में छोटी–छोटी ग्रंथियाँ में रहने वाले सूक्ष्म जीवाणु वायुमण्डल की नत्रजन को मृदा में स्थिरीकरण कर सके।

फसल चक्र मृदा व फसल दोनों के लिए लाभदायक है। अतः इस तरह से फसलों का फसल चक्र अपनाया जाना चाहिए जिससे उत्पादकता भी बढ़े एवं भूमि की गुणवत्ता एवं उर्वराशक्ति भी सतत् बनी रहे।

हम रखें मिट्टी का ख्याल,
मिट्टी रखेगी हमारा ख्याल।

हरी पत्ते वाली सब्जियों की व्यावसायिक खेती

राजेश चौधरी, अशोक चौधरी एवं सुरेश कुमार जाट
एसकेएन कृषि विश्वविद्यालय जोबनेर, जी. बी. पंत कृषि विश्वविद्यालय, पंतनगर एवं कृषि विश्वविद्यालय कोटा

भारतवर्ष में उगाई जाने वाली पत्तेदार सब्जियों में चौलाई, पालक और मैथी प्रमुख हैं। हरी सब्जियों में लौह तत्व एवं विटामिन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। हरी सब्जियों के लगातार उपयोग से रतौंधी रोग से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है व नेत्र ज्योति ठीक बनी रहती है।

जलवायु एवं भूमि : जहाँ तापमान बहुत अधिक नहीं पाया जाता है वहाँ पालक को समूचे वर्ष उगाया जा सकता है लेकिन सर्दियों में यह सबसे अधिक पनपता है। मैथी ठण्डे मौसम की फसल है और कुछ सीमा तक पाला भी सहन कर सकती है। चौलाई बसन्त ऋतु एवं बरसात दोनों में उगाई जा सकती है। इनकी खेती सभी प्रकार की भूमि में आसानी से की जा सकती है किन्तु बलुई दोमट मिट्टी व अच्छी खाद युक्त भूमि, काली व चिकनी मिट्टी की अपेक्षा अच्छी रहती है।

उन्नत किस्में

चौलाई : बड़ी चौलाई, छोटी चौलाई, कोयम्बटूर–1
पालक : पूसा ज्योति, आल ग्रीन, जोबनेर ग्रीन, पूसा हरित।
मैथी : पूसा अर्ली बंचिंग, आर एम टी–1, पूसा कस

बोने का समय व बीज की मात्रा

नाम फसल	बुवाई का समय	बीज दर प्रति हैक्टर
चौलाई बड़ी	फरवरी–मार्च व जून–जुलाई	2 से 2.5 किलो
चौलाई छोटी	फरवरी–मार्च	2 से 2.5 किलो
पालक)	फरवरी एवं जून से नवम्बर	25 से 30 किलो
मैथी देशी	सितम्बर से मध्य नवम्बर	20 से 25 किलो
मैथी कसूरी	सितम्बर से मध्य नवम्बर	10 से 15 किलो

बुवाई : पालक की बुवाई के लिए 20 से.मी. कतार से कतार की दूरी रखते हैं तथा बीज को 3 से 4 से.मी. की गहराई पर बोना चाहिए। छोटी चौलाई के लिए कतार से कतार की दूरी 20 से 25 से.मी. तथा बड़ी चौलाई के लिए कतार से कतार की दूरी 30 से 35 से.मी. रखनी चाहिए। बाद में कतारों में पौधों को 20 से.मी. की दूरी पर रहने देते हैं। मैथी के लिए कतार से कतार की दूरी 20 से 25 से.मी. रखनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : बुवाई से पूर्व 100 क्विंटल अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद, 25 किलो नत्रजन, 40 किलो फॉस्फोरस तथा 40 किलो पोटाश प्रति हैक्टर के हिसाब से भूमि में मिलाकर बुवाई करें। प्रत्येक कटाई के बाद 25 किलो नत्रजन प्रति हैक्टर के हिसाब से छिटक कर सिंचाई से पहले देवें। इससे अधिक उपज प्राप्त होती है।

कीट प्रबंध

मोयला एवं पत्ती छेदक कीट: मोयला पत्तियों से रस चूस कर हानि पहुँचाता है जबकि पत्ती छेदक कीट पत्तियों में छेद करके नुकसान पहुँचाता है। नियंत्रण हेतु मैलाथियॉन 5 प्रतिशत चूर्ण 20 से 25 किलो प्रति हैक्टर की दर से भुरकाव करें। भुरकाव से कटाई के बीच कम से कम 3 से 4 दिन का अंतराल रखें।

व्याधि प्रबंध

आर्द्र गलन : पौधों के उगते ही रोग लग जाता है जिससे पौधे मरने लगते हैं और खेत खाली होने लगता है। यह रोग भूमि एवं बीज के माध्यम से फैलता है। नियंत्रण हेतु बुवाई से पूर्व बीज को 3 ग्राम थाइरम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार कर बुवाई करें।

पत्ती धब्बा : इस रोग के प्रकोप से पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं जिससे ये सब्जियाँ बाजार में बेचने योग्य नहीं रहती हैं। नियंत्रण हेतु जाइनेब 2 ग्राम या मैंकोजैब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

छाछ्या : इस रोग के प्रकोप से पत्तियों पर सफेद चूर्णी धब्बे दिखाई देते हैं। इस रोग से फसल को काफी नुकसान होता है। नियंत्रण हेतु 2 ग्राम घुलनशील गंधक या एक मिलीमीटर केराथियान एल.सी. एक

उपज :

नाम फसल	उपज (क्विं./हे. पत्तियाँ)	कटाई की संख्या
चौलाई	70 से 100	6 से 7
पालक	100 से 150	4 से 8
मैथी	80 से 100	3 से 5

टमाटर की फसल में एकीकृत कीट प्रबंधन

हनुमान सिंह, हेमराज छीपा एवं अनिल कुमार गुप्ता
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान

सब्जी उत्पादन किसानों के लिए बहुत ही लाभदायक व्यवसाय है। जहां जलवायु की विविधता के कारण विभिन्न प्रकार की सब्जियों की खेती सफलतापूर्वक की जा रही है। सब्जियों पर कीटों का प्रकोप अधिक होता है। इससे पैदावार में कमी आती है और किसानों को नाशीकीटों द्वारा नुकसान झेलना पड़ता है। अतः कीटों का नियंत्रण अत्यंत महत्वपूर्ण है। कीटनाशकों के दुष्प्रभावों को देखते हुए एकीकृत कीट प्रबंधन पर अधिक बल देने की आवश्यकता है।

टमाटर का फलछेदक

यह एक बहुपौधभक्षी कीट है, जो कि टमाटर को नुकसान पहुंचाता है। इस कीट की सुंडिया कोमल पत्तियों और फूलों पर आक्रमण करती है तथा फिर फल मे छेद करके फल को ग्रसित करती है। फलछेदक की मादा शाम के समय पत्तों के निचले हिस्से पर हल्के पीले व सफेद रंग के अंडे देती हैं। इन अंडों से तीन से चार दिनों बाद हरे एवं भूरे रंग की सुंडियां निकलती हैं। पूरी तरह से विकसित सूंडी हरे रंग की होती है, जिनमें गहरे भूरे रंग की धारियां होती है। यह कीट फलों में छेद करके अपने शरीर का आधा भाग अंदर घुसाकर फल का गूदा खाती है। इसके कारण फल सड़ जाता है। इसका जीवनचक्र 4 से 6 सप्ताह में पूरा होता है।

तंबाकू की फलछेदक सुंडी

यह भी एक बहुपौधभक्षी कीट है। इसके अगले पंख स्लेटी लाल भूरे रंग के होते हैं। पिछले पंख मटमैले सफेद रंग के, जिसमें गहरे भूरे रंग की किनारी होती है। इसकी मादा पत्तों के नीचे 100 से 300 अंडे समूह में देती है, जिनको ऊपर से पीले भूरे रंग के बालों से मादा द्वारा ढक दिया जाता है। इन अंडो से 4 से 5 दिनों में हरे पीले रंग की सुंडियां निकलती हैं। ये प्रारम्भ मे समूह में रहकर पत्तियों की ऊपरी सतह खुरचकर खाती हैं। पूर्ण विकसित सूंडी जमीन के अंदर जाकर प्यूपा बनाती है। इस कीट का जीवनचक्र 30 से 40 दिनों में पूरा होता है।

फल मक्खी

फल मक्खी आकार में छोटी होती है, परंतु काफी हानिकारक होती है। यह मक्खी बरसात के मौसम में अधिक नुकसान करती हैं। इनके वयस्कों के गले में पीले रंग की धारियां देखी जा सकती हैं। इस कीट की मादा मक्खी फल प्ररोह के अग्रभाग में अथवा फल के अंदर अंडे देती है। इन अंडों से चार–पांच दिनों में सफेद रंग के शिशु (मैगट) निकल जाते है। ये फलों के अंदर घुसकर इसके गूदे को खाना प्रारंभ कर देते हैं। ये सुंडियां तीन अवस्थाओं से गुजरती हैं तथा मृदा में पूर्णतः विकसित होने पर प्यूपा बन जाती हैं। इन प्यूपा से 8 से 10 दिनों में वयस्क मक्खी निकलती है। यह लगभग एक माह तक जीवित रहती हैं।

सफेद मक्खी

सफेद मक्खी का प्रकोप टमाटर की फसल की शुरूआत से अंत तक रहता है। इस कीट की मक्खी सफेद रंग की होती है और बहुत ही छोटी होती हैं। इसके वयस्क एवं शिशु दोनों ही फलों से रस चूसकर नुकसान पहुंचाते हैं। सफेद मक्खी की मादा पत्तों की निचली सतह में 150 से 250 अंडे देती हैं। ये अंडे बहुत महीन होते हैं जिन्हें नंगी आंखों से नहीं देखा जा सकता। इन अंडों से 5 से 10 दिनों में शिशु निकलते हैं। शिशु तीन अवस्थाओं को पार कर चौथी अवस्था में पहुंचकर प्यूपा में परिवर्तित हो जाते हैं। प्यूपा से 10 से 15 दिनों बाद में वयस्क निकलते हैं और जीवनचक्र फिर से आरंभ कर देते है। इस कीट के शरीर से मीठा पदार्थ निकलता रहता है, जो पत्तों पर जम जाता है। इस पर काली फफूंद का आक्रमण होता है तथा पौधों को नुकसान पहुंचता है।

सफेद मक्खी का पत्तीयों पर प्रकोप

पर्ण खनिक कीट

यह एक बहुभक्षी कीट है, जो कि संपूर्ण विश्व में सब्जियों एवं फलों की 50 से अधिक किस्मों को नुकसान पहुंचाता है। इसकी मादा पत्ते के ऊतक एवं निचली सतह के अंदर अंडा देती है। अण्डों से दो–तीन दिनों बाद

निकलकर शिशु पत्ते की दो सतहों के बीच में रहकर नुकसान पहुंचाते हैं। ये शिशु सर्पाकार सुरंगों का निर्माण करते हैं। इन सफेद सुरंगों के कारण प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है तथा फसल की पैदावार पर प्रतिकूल असर पड़ता है। वयस्क शिशु 8 से 12 दिनों बाद मृदा में गिरकर प्यूपा बनाते हैं। इनसे 8 से 10 दिनों बाद वयस्क निकल जाते हैं।

कटुआ कीट

यह कीट छोटे पौधों को काफी नुकसान पहुंचाता है। कटुआ कीट छोटे पौधों को रात के समय काटते हैं और कभी–कभी कटे हुए छोटे पौधों को जमीन के अंदर भी ले जाते हैं। एक मादा सफेद रंग के 1200–1900 अंडे देती हैं। इनमें से चार पांच दिनों बाद सूंडी बाहर निकलती है। इसकी सुंडियां गंदी सलेटी भूरे–काले रंग की होती हैं। ये दिन के समय मृदा में छुपी हुई रहती हैं। पौधरोपण के समय से ही ये पौधे को मृदा की धरातल के बराबर तने को काटकर खाती हैं। इसकी सुंडियां लगभग 40 दिनों तक सक्रिय रहती हैं। इसका प्यूपा भी जमीन के अंदर ही बनता है। इसमें से लगभग 15 दिनों में वयस्क पतंगा निकलता है। इस कीट का जीवनचक्र 30 से 60 दिनों में पूरा हो जाता हैं।

एकीकृत कीट प्रबंधन

- क्षतिग्रस्त फलों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- खेत में सफाई पर विशेष ध्यान दें।
- खेतों में फसलचक्र को बढ़ावा दें।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें।
- अण्डों को और समूह में रहने वाली सुंडियों को एकत्रित करके नष्ट कर देन चाहिए।
- टमाटर की 16 पंक्तियों के बाद दो पंक्तियां गेंदे की लगाएं और गेंदे पर लगी सुंडियों को मारते रहें।
- रात्रि के समय रोशनी 'प्रकाश प्रपंच' का इस्तेमाल करना चहिए।
- नर वयस्कों को पकड़ने के लिए 'फेरोमोन प्रपंच' (रासायनिक) का इस्तेमाल भी उपयोगी है। एक एकड़ जमीन में चार से पांच ट्रैप लगाने चाहिए।
- फूल आने पर बैसिल्स थुरिनजियंसिस वार कुर्सटाकी 0.5 लीटर प्रति हैक्टर (70 मि.ली. 100 लीटर पानी में डइपैल 8 लीटर) का छिड़काव करें।
- ट्राइकोग्रामा प्रेटियोसम के अंडो का 20,000 प्रति एकड़ चार बार प्रति सप्ताह की दर से खेतों में प्रयोग करें।
- सफेद मक्खी और पर्ण खनिक को पकड़ने के लिए पीले रंग के चिपचिपे (गोंद लगे हुए) लगे हुए ट्रैप का इस्तेमाल करना चाहिए। प्रति 20 मीटर में एक ट्रैप लगा सकते हैं।
- फल मक्खी के नर वयस्कों को पकड़ने के लिए क्युन्योर नामक आकर्षक या पालम ट्रैप का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। 10 ग्राम गुड़ अथवा चीनी का घोल और 2 मि.ली. मैलाथियान (50 ई.सी.) प्रति लीटर पानी में घोल कर छिडकाव करें। मिथाइल यूजीनॉल (40 मि.ली.) और मैलाथियान (20 मि.ली.) (2 मि.ली. प्रति लीटर पानी) के घोल को बोतलों में डालकर टमाटर के खेत में लटकाने से इस कीट को नियंत्रित किया जा सकता है।
- अधिक प्रकोप होने पर क्वीनालफॉस 20 प्रतिशत (1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी) या लैम्डा–साईहैलोथ्रिन (5 प्रतिशत ई.सी.) या इमिडाक्लोप्रिड 0.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी या ट्रायजोफॉस 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें।
- खेत तैयार करते समय मृदा में क्लोरपाइरिफॉस 20 ई.सी. 2 लीटर का 20 से 25 कि.ग्रा. रेत में मिलाकर प्रति हैक्टर खेत में अच्छी तरह मिला दें।

किसान कॉल सेन्टर
हेल्पलाईन 0744–2662700
कृषि प्रौद्योगिकी प्रबंधन एवं गुणवत्ता सुधार केन्द्र
(राष्ट्रीय कृषि विकास परियोजना)
प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

हल्दी की व्यावसायिक खेती

अशोक चौधरी, राजेश चौधरी एवं सुरेश कुमार जाट
एसकेएन कृषि विश्वविद्यालय जोबनेर, जी. बी. पंत कृषि विश्वविद्यालय, पंतनगर एवं कृषि विश्वविद्यालय कोटा

हल्दी औषधियुक्त मसाले वाली फसल है। इसका मानव के दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। इसका उपयोग अचार आदि बनाने तथा मसाले के रूप में किया जाता है। उद्योगों में हल्दी का प्रयोग ऊन, सिल्क तथा अन्य कपड़ों की रंगाई में किया जाता है। औषधि के रूप में भी हल्दी का प्रयोग किया जाता है।

जलवायु एवं भूमि : हल्दी उष्ण जलवायु की फसल है। इसकी खेती विभिन्न प्रकार की भूमि में की जा सकती है। मैदानी क्षेत्रों में अर्ध छाया वाले स्थानों में उगायी जा सकती है। लेकिन उचित जल निकास वाली दोमट भूमि इसके लिये सर्वोत्तम होती है। भारी भूमि जिसमें जल निकास ठीक नहीं होता, हल्दी का उत्पादन संतोषजनक नहीं होता है।

उन्नत किस्में

सुगंधम : अधिक पैदावार, ललाईयुक्त पीला प्रकंद, सुगठित लम्बी अंगुलियों वाली किस्म जिसमें अच्छी सुगन्ध होती है। फसल समयावधि 210 दिन, (मध्यम) पैदावार (ताजे प्रकंद) 15 टन प्रति हैक्टर है। यह सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होती है।

स्वर्णा : एन.आर.सी.एस. कालीकट से विकसति अधिक पैदावार देने वाली मध्यम आकार के प्रकंद व गहरे नारंगी रंग की किस्म है। फसल समयावधि 200 दिन (मध्यम) उपज 17.4 टन प्रति हैक्टर है।

सुगुना–(पी.सी.टी.–13) : अधिक पैदावार मोटा व स्थूल प्रकंद, प्रकंद गलन बीमारी से प्रतिरोधी, 4.9 प्रतिशत कुरकुमिन, 6 प्रतिशत तेल, (एन.आर.सी.एस.) कालीकट से विकसित फसल समयावधि 190 दिन (अगेती) 29.3 टन प्रति हैक्टर है।

प्रभा : फसल समयावधि–195 दिन, कुरकुमिन 6.53 प्रतिशत, ओलियोरेजिन 15 प्रतिशत, उपज 37.47 टन प्रति हैक्टर, ड्राईरिकबरी 19.5 प्रतिशत है।

प्रतिभा : फसल समयावधि–188 दिन, कुरकुमिन 6.21 प्रतिशत, ओलियोरेजिन 16.2 प्रतिशत, उपज 39.12 टन राइजोम प्रति हैक्टर, ड्राईरिकबरी 18.5 प्रतिशत है। यू.डी. 1–2, 3 एवं 6 आई. एल.एल. आर. अन्य उन्नत किस्में हैं।

खेत की तैयारी : खेत की एक गहरी जुताई करने के बाद कल्टीवेटर व पाटा चला कर मिट्टी को भुरभुरी बना लेना चाहिए। खेत तैयार हो जाने के बाद 50 से.मी. दूरी पर डोलियाँ बना लेनी चाहिए।

बीज की मात्रा एवं बुवाई : हल्की बुवाई के लिये बीज के रूप में कंद लगाए जाते हैं। कंदों की बुवाई के लिये प्रति हैक्टर 20–25 क्विंटल गांठों की आवश्यकता होती है। बुवाई से पहले कंदों को 0.2 प्रतिशत मैन्कोजेब घोल में 5 मिनट तक डूबोकर उपचारित करना चाहिये। उपचारित कंदों को खेत में बनायी गयी डोलियों पर लगभग 15 से.मी. की दूरी पर बोना चाहिये। इसकी गहराई 7.5 से.मी. से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। कंद बोने का उत्तम समय जून माह है।

खाद एवं उर्वरक : इसके लिये खेत को तैयार करते समय 200 क्विंटल गोबर की खाद, 50 किलो फॉस्फोरस व 100 किलो पोटाश प्रति हैक्टर की दर से डोलियाँ बनाने से पहले खेत में मिलाना चाहिये। इसके अलावा 50 किलो नत्रजन दो समान भागों में बांटकर बुवाई के 2 माह पश्चात् व उसके एक माह बाद पौधों के चारों तरफ डालें।

सिंचाई एवं निराई–गुड़ाई : पहली सिंचाई गांठें लगाने के तुरन्त बाद देनी चाहिये। उसके बाद आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें। इसके लिये कुल 15–25 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। दो या तीन सप्ताह बाद हल्की गुड़ाई करें तथा पौधों पर मिट्टी चढ़ायें।

कीट प्रबंध :

थ्रिप्स : यह कीट पत्तियों को खुरचकर खाता है जिसके कारण पौधे कमजोर हो जाते हैं। नियन्त्रण हेतु डाईमिथोएट 30 ई.सी. एक मिलीलीटर का प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

व्याधि प्रबंध :

पत्ती धब्बा रोग : रोग के प्रकोप से पत्तियों पर भूरे तथा पीले रंग के धब्बे पड़ जाते हैं तथा पत्तियाँ सूख जाती हैं। इसकी रोकथाम के लिए मैन्कोजेब के 0.2 प्रतिशत (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) घोल का छिड़काव करना चाहिये।

खुदाई एवं उपज : हल्दी की फसल 8 से 9 माह पश्चात् पक जाती है। पकने के समय पत्ते सूख जाते हैं। इसी समय खुदाई कर लेनी चाहिए। इसकी उपज 200–250 क्विंटल प्रति हैक्टर तक होती है। इसकी सूखी हल्दी 20–22 प्रतिशत तक बैठती है।

सूखी हल्दी बनाने की विधि : हल्दी की खुदाई करने के बाद एक दो दिन सुखाकर मिट्टी साफ कर लेनी चाहिये फिर कढ़ाव में पानी उबालें तथा उसमें हल्दी की गांठें किसी कपड़े की पोटली (गठरी) में बांध कर छोड़ देनी चाहिये। पोटली को 15–20 मिनट तक कढ़ाव में रहने दें। बाद में गठरी निकाल कर गांठों को धूप में सुखा देवें। 15 दिन में गांठें सूखकर कड़ी हो जाती हैं। सूखने के बाद गांठों को खुरचकर साफ कर लेवें। इस प्रकार हल्दी तैयार हो जाती है। संसाधन के पहचान उनमें पीला रंग लाने के लिये 30 ग्राम सोडियम–बाई–कार्बोनेट और 30 ग्राम हाइड्रोक्लोरिक एसिड से प्रति 100 किलो कंद उपचारित किया जाना अनुशंसित किया गया।

बीज के लिए हल्दी का संरक्षण : बीज के लिये हल्दी को कच्ची दशा में रखना पड़ता है। इसके संरक्षण की दो निम्न विधियाँ हैं–

1. गड्ढा बनाकर : इसके लिये दो मीटर लम्बा, दो मीटर चौड़ा तथा एक मीटर गहरा खड्डा खोद कर गड्ढे के चारों ओर दीवार की सतह से लगाकर हल्दी की सूखी पत्तियों को डाल देवें तथा इसमें हल्दी की गांठें भर देवें। भरते समय इस बात का ध्यान रहें कि ऊपर की तरफ थोड़ी जगह छोड़कर लकड़ी के पतले तखते रखें और उसके ऊपर मिट्टी रखकर लेप कर देवें। इस गड्ढे के अन्दर पानी का प्रवेश बिल्कुल नहीं होना चाहिये अन्यथा गांठें सड़ जायेंगी। इस प्रकार 3 से 5 माह तक हल्दी का बीज सुरक्षित रखा जा सकता है।

2. ढेर बनाकर : ढेर लगाने की विधि में बीजों को इकट्ठा करके घास–फूस से ढककर चारों तरफ से मिट्टी का लेप कर दिया जाता है तथा समय–समय पर उस पर गोबर का लेप कर दिया जाता है। यह विधि उत्तम है।

बेल (बीलपत्र) की खेती का उन्नत उत्पादन

रामसिंह चौधरी, मनोज कुमार, हेमन्त गुर्जर एवं बी.एल. नागर
कृषि महाविद्यालय, कोटा

बेल (एगेल मारमेलोस) यह कटेसी कुल का फल वृक्ष है उत्पत्ति स्थान भारत होने के कारण इसका उत्पादन विपरीत जलवायु मे लिया जा सकता है, यह फलवृक्ष तापरोधी, सूखा सहनशील व नमी की कमी में भी उत्पादन दे सकता है। बेल की खेती 5-10 पी.एच. मान पर की जा सकती है बेल कम व अधिक तापमान के प्रति सहनशील है व बेल के जड़, छाल, बीज व फल का उपयोग औषधीय उपयोग मे लाया जाता हैं बेल फल के द्वारा से विभिन्न प्रकार के मूल्य संवर्धित उत्पाद तैयार किए जा सकते है जैसे स्केवश, मुरब्बा, टॉफी, पाउडर जैम आदि।

बेल की खेती के लिए उपोष्ण जलवायु सबसे अधिक उपयुक्त है। भारत मे बेल की क्षेत्र, उत्पादन व उत्पादकता अन्य देशो की तुलना मे सबसे अधिक है। प्राचीन काल मे घरो में बेल का फल वृक्ष भगवान शिवशंकर को त्रिपर्ण अर्पित करने के लिए किया जाता था। बेल भारत के प्राचीन फलों मे से एक हैं, बेल के लिए कहा गया है 'रोगान बिलति मिनन्ति ईति बिल्व" अर्थात जो रोगो का नाश करे वह बेल कहलाता है। बेल फल के पंचांग (जड़, छाल, पत्ते, शाख, फल) ओषधीय रूप में मानव जीवन के लिए उपयोगी पायें जाते है। बेल के पत्तों का औषधीय गुणों का वर्णन यजुर्वेद, चरक सहिता और वृहत संहिता में मिलता है। प्राचीन से बेल को श्री फल के नाम से जाना जाता है। बेल के फलों के सेवन से हृदय को ताकत और दिमाग को मजबूती प्रदान करता है। इसके अलावा इसके सेवन से अजीर्ण, पीलिया, बवासीर, पेचिश, अल्सर एवं डायरिया आदि रोगों से भी बचा जा सकता है।

भूमि : बेल एक बहुत ही सुखा सहनशील व तापरोधी फल वृक्ष है इसे किसी भी प्रकार की समस्याग्रस्त क्षेत्रो जैसे ऊसर बंजर, कंकरीली व खादड़ भूमि पर खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है परन्तु उत्तम गुणवत्ता युक्त फल उचित जल निकास युक्त बलुई दोमट पर किया जाता है बेल की खेती के लिए उच्चतम पी.एच. मान 6–8 होता है, परन्तु 5–10 पी.एच. मान पर भी की जा सकती है।

जलवायु: बेल एक उपोष्ण जलवायु का फल वृक्ष है। यह कम व अधिक तापमान के प्रति सहनशील फल वृक्ष है। गर्मियों में मई – जून माह मे पत्तियों के झड जाने से सुखा सहनशीलता व तपरोधिता बढ़ जाती है।

गड्ढे की तैयारी व पौधों की रोपाई : गड्ढे पौधे रोपाई के एक माह पूर्व ही खोद लेने चाहिए तथा मानसून के समय जुलाई में पौधों को गड्ढों में लगा देना चाहिए। पौधों की रोपाई के दौरान पौधों से पौधे की दूरी 6–8 मी. रखनी चाहिए जो कि मृदा की उर्वरता व किस्म पर निर्धारित रहती है।

प्रवर्धन: बेल के पौधे बीज द्वारा भी तैयार किये जा सकते है तथा पेबन्दी चस्पा विधि के लिए उत्तम समय जून– जुलाई माह में करने से 80–90 प्रतिशत सफलता प्राप्त की जा सकती है।

खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग: पौधों की अच्छी वानस्पतिक वृद्धि व अधिक फलन के लिए पोषक तत्वों का उचित प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है इसके लिए प्रति पौधा 10 किलोग्राम सडी गोबर की खाद, 50 ग्राम नत्रजन, 25 ग्राम फास्फोरस, 50 ग्राम पोटाश की मात्रा प्रति वर्ष प्रति वृक्ष डालनी चाहिए। यह खाद व उर्वरक की मात्रा 10 वर्ष तक गुनित अनुपात में बदलते रहना चाहिए।

सिंचाई : नए पौधों को लगाने के दो वर्ष सिचाई की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। गर्मियों मे बेल का पौधा अपनी पत्तियाँ गिराकर सुसुप्ता अवस्था मे चला जाता है, इस कारण बेल एक सूखा सहनशील फल वृक्ष है तथा सिंचाई निरंतर रूप से पानी की उपलब्धता के अनुसार 7–14 दिन के अन्तराल पर करते रहना चाहिए।

पौधों की संघाई, कटाई छटाई एवं अन्त: फसले: पौधों में संघाई कार्य शुरु के 4–5 वर्षो तक करना चाहिए। मुख्य तने को 7.5 सेमी तक बढ़ने दिया जाता है इसके पश्चात 4–6 मुख्य शाखाये चारों दिशाओ बढ़ने देनी चाहिए। बेल के पौधों में कटाई छटाई की कम आवश्यकता पड़ती हैं लेकिन सुखी रोगग्रस्त व कीट ग्रसित टहनियो को नियमित अन्तराल पर हटाते रहना चाहिए अन्त: फसले मुख्यत: दलहनी फसलें लेनी चाहिए जो कृषि की उर्वरक क्षमता को बढा सके जैसे मटर, गवार, लोबिया, मुंग आदि।

उन्नत किस्में : गोमापासी, थार दिव्या, थार नीलकंठ, थार सृष्टि, छठ–5, छठ–7, छठ–9, छठ–16, छठ–17, पन्त अपर्णा, पन्त शिवानी, पन्त उर्वशी, पन्त सुजाता, CISH-B-1, CISH B-2

फलों की तुड़ाई एवं उपज: फल अप्रैल मई में तोड़ने योग्य गहरे हरे रंग से बदलकर पीरा हरा होने लगे तो फलों की तुडाई 2 सेमी डंठल के साथ करनी चाहिए। तोडते समय ध्यान रखना चाहिए की फल जमीन पर ना गिरे वरना फलों की त्वचा चिटक जाती है, जो की भंडारण के लिए अनुपयुक्त हैं। कलमी पौधों में फल 3–4 वर्षो मे फलन प्रारम्भ हो जाती है। जबकि बीजू पेड़ 5–7 वर्षो में फल देने लगते हैं। फलों की संख्या पोधें के आकार व किस्म पर निर्भर करती हैं । 10–15 वर्ष के फल वृक्ष पर 200–300 फल प्राप्त होते हैं।

उपयोग: पके बेल के गूदे को सुखाकर पाउडर के रूप में दूध के साथ लेने से पुरानी जीर्ण संग्रहणी एवं अन्य पेट के विकारों में लाभ पाया जा सकता है मौसम मे नियमित बेल के गूदे का सीधा सेवन या शर्बत बनाकर सेवन अत्यन्त लाभकारी है। इसके उपयोग से पेट के रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है। कच्चे बेल को भुनकर खाने से पेचिश, भूख को बढ़ाना एवं अन्य पेट के विकारों से छुटकारा पाया जा सकता है।

कद्दूवर्गीय सब्जियों में कीट प्रबंधन

हनुमान सिंह
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

भारत में कद्दूवर्गीय सब्जियों का हिस्सा कुल सब्जी उत्पादन का 5.6 प्रतिशत है एवं उत्पादकता लगभग 10 टन प्रति हेक्टेयर हैं। कद्दूवर्गीय सब्जियां, गर्मी और वर्षा ऋतु के मौसम की महत्वपूर्ण फसलें हैं। यह पोषण एवं उत्पादकता की दृष्टि से भी बहुत ही महत्वपूर्ण होती हैं। इनमें बहुत ही आवश्यक विटामिन और खनिज तत्व पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। कद्दूवर्गीय फसलों में करेला, लौकी, कद्दू, तरबूज, खरबूजा, पेठा, ककड़ी, टिण्डा, खीरा आदि शामिल हैं।

इन सब्जियों का औषधीय दृष्टि से भी बहुत महत्व हैं जैसे करेला गठिया रोग, ककड़ी नमक के साथ कच्ची खाने पर पेट के विकारों में एवं मूत्र विकारों में लाभ होता है। खीरा मधुमेह व हृदय रोगी के लिए लाभकारी होता है। परवल के फल पेट विकारों में लाभदायक होते है और इसकी सब्जी कब्ज दूर करने वाली, मूत्र प्रणाली को साफ करने में सहायक, हृदय, मस्तिष्क तथा रक्त संचरण तंत्र में उपयोगी है। इन सब में लौकी को सबसे अधिक स्वास्थ्य लाभकारक माना गया है। लौकी कब्ज को रोकती है तथा गुद्दा मुत्र रोग एवं पेट साफ करने के लिए बहुत उपयोगी है। इन सब्जियों के उत्पादन में अनेक बाधाएं, कीटों एवं व्याधियों के रूप में सामने आती हैं। इनका सही समय पर नियंत्रण करना अति आवश्यक हैं। कद्दूवर्गीय सब्जियों के प्रमुख कीटों का नियंत्रण किन तरीकों से किया जा सकता हैं। इस संबंध में विभिन्न कीटों के अनुसार प्रबंधन से संबधित जानकारियां लेख में बताई गई हैं।

प्रमुख कीट एवं प्रबंधन

फल मक्खी : इस कीट का वैज्ञानिक नाम बैक्टरोसेरा क्यूकूरबिटी हैं। यह डिप्टेरा गण के टेफ्रीटिडी कुल का कीट है।

फल मक्खी का फलों पर प्रकोप

पहचान : इसका वयस्क लाल भूरे रंग का व वक्ष पर पीले रंग की मार्किंग होती हैं। फल मक्खी की मादा 6–7 मि.मी. आकार की होती हैं। नर अपेक्षाकृत छोटा होता है। मादा सफेद सिगार आकार के अंडे, कोमल, नरम फलों में 2 से 4 मि.मी. अंदर घुसकर देती है। लटावस्था मैगट मटमैले सफेद रंग की होती हैं। इसका अग्र भाग चौड़ा तथा पश्च भाग पतला होता हैं। लटें टांगरहित होती हैं। पूर्ण विकसित मैगट 9–10 मि. मी. लंबी व बीच से 2 मि.मी. चौड़ी होती हैं। प्यूपीकरण मृदा में सतह से 0. 5 सें.मी. नीचे होता हैं।

नुकसान की प्रकृति : इस कीट की मैगट अवस्था मुख्य हानि पहुंचाती हैं। यह फल में छेद करके अंडे देती है, जिससे प्रभावित हिस्सा मुड़कर टेढा हो जाता हैं। छेद, रोगजनक जैसे कि जीवाणु और कवक के लिए प्रवेश बिन्दु का काम करता हैं। अंडे से मैगट निकलकर फल का गूदा खाती हैं। छोटे फलों की वृद्धि रूक जाती हैं। फल सड़कर डंठल से अलग होकर गिर जाते हैं।

प्रबंधन

- ग्रसित फलों को एकत्रित करके नश्ट करें।
- गर्मी में खेत की गहरी जुताई करें।
- फल मक्खी प्रतिरोधी किस्मों की बुआई करें जैसे– ककड़ी में इम्प्रूव्ड लाँग ग्रीन, तोरई में पीलीभीत पद्मनी आदि।
- फल मक्खी की निगरानी के लिए फलों के बागों में मिथाइल युजिनोल ट्रैप और क्यू–ल्युर ट्रैप लगाएं।
- फसल पर मैलाथियान 50 ई.सी. का 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

लाल कद्दू भृग : इस कीट का वैज्ञानिक नाम रेपिडोपाल्पा (एल्युकोफोरा) फोविकोलिस है। यह कीट कोलियोपटेरा गण के क्राइसोमेलिडी कुल का है।

पहचान : इसका वयस्क भृंग चमकदार नारंगी रंग का होता हैं। यह लगभग 7 मि.मी. लंबा और 45 मि.मी. चौड़ा होता हैं। मादा, नारंगी अथवा पीले रंग के अंडों को पौधों के निकट जमीन में देती हैं। इसका ग्रब पीलापन लिए हुए सफेद होता हैं। इसका सिरा भूरे रंग का होता हैं। पूर्ण विकसित ग्रब लगभग 12 मि.मी. चौड़ा होता हैं। इनका प्यूपा भी जमीन में बनता हैं।

लाल कद्दू भृग फूलों व पत्तियों में छेदकर के नुकसान पहुंचाते हुए

इस कीट के ग्रब एवं वयस्क दोनों अवस्थाएं हानिकारक होती हैं। ग्रब पौधों की मुलायम जड़ों को खाकर नुकसान पहुंचाते है एवं फलावस्था में भूमि पर रखे फलों में छेद बनाकर, इन्हें खाकर खोखला कर देती हैं। इससे छोटे फल सड़ जाते हैं। वयस्क भृंग बीजपत्र फूलों व पत्तियों में छेदकर के नुकसान पहुंचाती हैं। इससे पौधों की बढ़वार रूक जाती हैं।

प्रबंधन

- कीट प्रतिरोधी किस्मों की बुआई करनी चाहिए।
- फसल लेने के बाद में खेत की गहरी जुताई करने से भूमि में उपस्थित अपरिपक्व अवस्थाएं नष्ट हो जाती हैं।
- अगेती बुआई करके भी इस कीट का प्रकोप कम किया जा सकता हैं।
- फसल खत्म होने के उपरान्त बेलों को खेत से हटाकर नष्ट कर देवें।
- इंडोक्साकार्ब 14.5 एस.सी. 1 मि.ली./2 लीटर या कार्बोरिल 50 डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम/लीटर का छिड़काव करें।
- भूमिगत शिशुओं के लिए क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 2.5 लीटर/हैक्टर की दर से हल्की सिंचाई के साथ प्रयोग करें।

चेपा/माहूं : इस कीट का वैज्ञानिक नाम ऐफिस गोसीपाई हैं। यह कीट हेमिप्टेरा गण एफिडिडी कुल का हैं।

पहचान : इस कीट के वयस्क हल्के रंग के होते हैं। कीट की पंख वाली अवस्था में इसका रंग भूरा होता हैं। ये लगभग 1.25 मि.मी. लंबे होते हैं। इसके शिशु दिखने में वयस्क के समान, लेकिन आकार में छोटे होते हैं। फसल पकने के बाद पंखदार वयस्क भी दिखाई देते हैं। इनके पंख पारदर्शी होते हैं, जिनमें काली नसें दिखाई पड़ती हैं।

चेपा पौधों का रस चूसते हुए

नुकसान की प्रकृति : इस कीट के वयस्क और शिशु दोनों अवस्थाएं पौधों को नुकसान पहुंचाती हैं। कीट पौधों का रस चूसते हैं। इससे पौधा कमजोर हो जाता है ओर उनका विकास रूक जाता हैं। लगातार रस चूसने के कारण पत्तियों का रंग पीला पड़ जाता है, जो बाद में सूख जाती हैं। इसके अलावा ये एक चिपचिपा पदार्थ निकालते हैं, जिसे हनीड्यू कहते हैं। इस पदार्थ से पत्तियों में काला कवक बनने की स्थिति बढ़ जाती है, जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में बाधा उत्पन्न होती हैं। ये कीट खीरे व तरबूज में वायरस रोग को फैलाते हैं। कद्दू में पर्ण कुंचन रोग भी इस कीट के द्वारा फैलता हैं।

प्रबंधन

- लेडी बर्ड भृंग का संरक्षण करें।
- आसपास के खरपतवार को नष्ट कर देवें।
- नाइट्रोजन खाद का अधिक प्रयोग न करें।
- इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 1 मि.ली./3 लीटर की दर से छिड़काव करें।

बरूथी कीट : इसका वैज्ञानिक नाम टेट्रानिकस निओक्लेडिनीकस हैं। यह ट्रोम्बिडिर्फोमिस गण के टेट्रनिकिडी कुल का कीट हैं।

बरूथी कीट से प्रभावित पत्तियॉ

पहचान : ये मकड़ी प्रजाति के बहुत छोटे–छोटे जीव होते है, जो आखों से मुश्किल से दिखाई देते हैं। यह कीट हल्का भूरा, शरीर पर दो आंखों जैसे– धब्बे, चार जोड़ी टांगे व बहुत सक्रिय होता हैं। पूर्ण विकसित नर 0.52 मि.मी. लंबा व 0.30 मि.मी. चौड़ा होता हैं। मादा का शरीर अंडाकार, पायरीफॉर्म व रंग परिवर्तनीय होता हैं। यह लाल, हरा व जंगदार हरे रंग का हो सकता है तथा दो बड़े रंगदार धब्बे शरीर पर होते हैं। इसकी मादा 60–80 तक अंडे पत्तियों की निचली सतह पर देती हैं। पूर्ण विकसित निम्फ अति सूक्ष्म 0.33 मि.मी. लंबा होता हैं।

नुकसान की प्रकृति : इसके शिशु एवं वयस्क दोनों ही पौधों के विभिन्न भागों से रस चुसते हैं। इससे पौधे का हरा भाग नष्ट हो जाता हैं। पत्तों पर पहले सुई की नोक जैसे छोटे हल्के सफेद पीले रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। प्रकोप अधिक होने पर माइट पौधों पर रेशमी जाल बनाती है। प्रभावित पत्तियां सूख जाती हैं। टहनियां असामान्य रूप से बढ़ने लगती हैं तथा पुरानी पत्तियां थोडी मोटी हो जाती हैं।

प्रबंधन

- कीट प्रतिरोधी किस्मों की बुआई करें।
- खेतों में नीम के बीज के पाउडर का छिड़काव करते रहना चाहिए।
- डाइकोफोल 18.5 ई.सी. 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।
- कीट का प्रकोप पानी के तेज छिड़काव से कम किया जा सकता हैं।

सफेद मक्खी : इस कीट का वैज्ञानिक नाम बैमेसीया टेबेसाई हैं। यह हेमिप्टेरा गण के एल्यूरोडिडी कुल का कीट हैं।

पहचान : इस कीट की मक्खी सफेद रंग की होती है और बहुत ही छोटी होती हैं। सफेद मक्खी की मादा पत्तों की निचली सतह में 150 से 250 अंडे देती हैं। ये अंडे बहुत महीन होते हैं जिन्हें नंगी आंखों से नहीं देखा जा सकता। इन अंडों से 5 से 10 दिनों में शिशु निकलते हैं। शिशु तीन अवस्थाओं को पार कर चौथी अवस्था में पहुंचकर प्यूपा में परिवर्तित हो जाते हैं। प्यूपा से 10 से 15 दिनों बाद में वयस्क निकलते हैं और जीवनचक्र फिर से आरंभ कर देते है।

सफेद मक्खी के प्रकोप से ग्रसित पत्तियॉ

नुकसान की प्रकृति : इसके वयस्क एवं शिशु दोनों ही फलों से रस चूसकर नुकसान पहुंचाते हैं। इस कीट के शरीर से मीठा पदार्थ निकलता रहता है, जो पत्तों पर जम जाता है। इस पर काली फफूंद का आक्रमण होता है तथा पौधों को नुकसान पहुंचता है।

प्रबंधन

- खेत को साफ सथुरा रखें।
- अधिक ग्रसित पौधों को एकत्रित करके नष्ट करें।
- कीट को आकर्षित करने के लिए पीलें रंग के स्टिकी ट्रैप लगायें।
- इमिडाक्लोप्रिड 70 डब्लयू एस 8–10 ग्राम प्रति किलो बीज के दर से उपचार करें।
- इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 1 मि.लि. प्रति 3 लीटर की दर से छिड़काव करें।